देवता कैसे बनें ?

(देवत्व के विकास की अनुभावात्मक विचार पद्धति)

लेखक :
डा० राम चरण महेन्द्र
एम० ए० पी० एच० डी०
प्रिंसपल, गवर्नमेन्ट कालेज
झालावाड़, (राजस्थान)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली (उ०प्र०)

देवता कैसे बनें ?

[मनुष्य में सप्त देवत्व की पवित्र भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के विकास के उपाय]

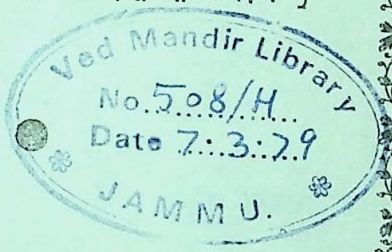

लेखक :

डॉ० रामचरण महेन्द्र

एम. ए., पी. एच. डी.

प्रिंसिपल, गवर्नमेन्ट कॉलेज

झालावाड़ (राजस्थान)

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेद नगर, बरेली २४३००१ (उ.प्र.)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब, वेद नगर

बरेली, २४३००१ (उ० प्र०)

*

लेखक :

डॉ० रामचरण महेन्द्र

*

प्रथम संस्करण

१९७३

*

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

*

[illegible] तीन रुपये पचास पै

देवत्व का विकास किया जाए

मनुष्य केवल हाड़ मांस का पुतला नहीं, प्रत्युत उच्चतम दैवी गुणों से परिपूर्ण आत्मा है। उसके शरीर, मन और आत्मा में भगवान ने असंख्य उत्कृष्ट विभूतियाँ भर दी हैं यदि वह अपने ईश्वरीय भावों का विकास कर ले और आस-पास भी वैसे ही पवित्र विचारों को फैलावे, तो धरती पर देवता बनाये जा सकते हैं।

मनुष्य के पितृवंश को कोई नहीं पूछता, उसके पवित्र गुणों और श्रेष्ठताओं की सर्वत्र पूजा होती है। लोग भगवान कृष्ण को नमस्कार करते हैं, न कि उसके पिता वसुदेव को! सद्गुण रूपी ऐसा धन है, जिसको न बिरादरी वाले भाई बन्धु बाँट सकते हैं और न चोर ले जा सकते हैं। दान से भी इसका क्षय नहीं होता। अतः सद्गुणों को अधिकाधिक बढ़ाया जाय।

कानून की सजाओं, कुटिलता, राजनीति की गुटबन्दी आपाधापी, अन्याय आवेश से संसार में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। समस्त भावनों के बावजूद मनुष्य विनाश के दुस्वप्नों से भयभीत है। आध्यात्म के अभाव में ही सारे झंझट फैले हुए हैं। आध्यात्म और धर्म की भावनाएं पुष्ट होने से ही सदाचार का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। सद्बुद्धि और विवेक के आधार पर ही देवत्व का विकास हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में धर्म के व्यवहार द्वारा व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास का मार्ग स्पष्ट किया गया है।

रामचरण महेन्द्र

एम. ए., पी-एच० डी०

गवर्नमेन्ट कालेज,

झालावाड़

क्रम

१—मानव में दैवत्व है !	५
२—आओ हम धर्म को जिएं !	७
३—हमारे साथ 'कोई' है !	२२
४—आपका धर्म आपको क्या सिखाता है ?	२४
५—धर्म बुद्धि की अवहेलना से मानसिक क्लेश !	२६
६—मनुष्य का देवत्व कभी न कभी जोर मारता है !	२२
७—मनुष्य में सत्संस्कार भी दबे रहते हैं !	३७
८—आज के युग में साधु क्या करें ?	४६
९—धरती पर देवता बनने वाली दैवी सम्पदाएँ !	४४
१०—लोग दुःखी क्यों हैं ?	६१
११—धरती के देवता !	९९
१२—मानवता की पूजा-सच्ची पूजा !	१२३
१३—मौत की सजा !	११९
१४—सत्पुरुषों के आभूषण ! (कहानी)	११७
१५—भगवान महावीर का समाधान !	१३७
१६—पेशगी वेतन ! (कहानी)	१४०
१७—मनुष्यता की प्रतिमूर्ति !	१४३
१८—पुण्य नष्ट कैसे हुआ ? (कहानी)	१४३
१९—बाबूजी भी खूब आदमी थे !	१५२
२०—क्या गंगा-स्नान मात्र से मुक्ति सम्भव है !	१५६
२१—मनुष्य से तो पशु-पक्षी ही अच्छे !	१६४

देवता कैसे बनें ?

मानव में देवत्व है !

ईश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति का बनाकर धरती पर स्वर्ग को उतारने के लिए भेजा है। वह भगवान् का पुण्य कार्य— सत्य, न्याय, प्रेम, कर्तव्य पालन, सयम, त्याग, बलिदान, सदाचार को प्रतिष्ठित करने के लिए जन्मा है। सत्प्रवृत्तियों के प्रचार प्रसार और विकास द्वारा ही पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि की जा सकती है। धर्म के सही व्यवहार से ही विकास, समृद्धि और समाज की सन्तुलित व्यवस्था कायम की जा सकती है। धर्म तन्त्र की स्थापना से ही प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा स्थापित धर्मनीति और आदर्श मर्यादाओं की प्रतिष्ठापना को जा सकती है। हमारा धर्मजीवन को सही तरीकों से जीने की एक आवश्यक और अनिवार्य जीवन पद्धति है।

प्रत्येक मनुष्य में ऊंचा उठाने या नीचा गिराने वाले दो भाव होते हैं। जो भाव ऊंचा उठने और सदाचार के कार्यों को करने की उपयोगी प्रेरणा देते हैं, उन्हें देवत्व के अन्तर्गत रखा जाता है। दूसरी ओर जो भाव नीचा गिरने या तोड़-फोड़ हिंसा, गुण्डागिर्दी, विलासिता नशेबाजी, कामुकता, ठगी, बेईमानी जैसी राक्षसी प्रवृत्तियों को बढ़ाते हैं, उन्हें दानवत्व की कोटि में रखा जाता है, आज के सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में उच्छृखलता, अवज्ञा, कृतन्धता, असहयोग, दुराव छिपाव, सन्देह, झूठ फरेब, अविश्वास, सन्देह जैसी दुष्ट प्रवृतियाँ उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर हैं।

राजनीति ने हमारे जीवन को बुरी तरह पक्षपात, भाषा, प्रान्त, जाति आदि के छोटे-छोटे झगड़ों से भर दिया है। धार्मिक क्षेत्र मे साधु सन्यासियों का बाना पहिनकर दृष्ट धार्मिक वृत्ति के लोगों को ठग रही है। पण्डे, मठाधीश, पुरोहित मौज से भोग विलास का दूषित जीवन बिता रहे है। ऐसी दुरावस्था मे धर्म के व्यवहारिक उपयोग द्वारा ही मानव के देवत्व को उभारा जा सकता है।

मनुष्य की सत्प्रवृत्तियों के समग्र विकास और प्रोत्साहन का कार्य देश और समाज के नव निर्माण के लिए अति आवश्यक है। कर्तव्य और धर्म के उपयोग की निहायत जरूरत है। धर्मनीति या आचरण करने से ही पृथ्वी पर स्वर्ग अवतरित किया जा सकता है। पुराने विचारकों ने एक धर्मतन्त्र की व्यवस्था की थी जो स्वस्थ्य समाज और उन्नतिशील मानव की प्रथमतः अनिवार्य आवश्यकता थी। उसके दैनिक उपयोग से ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती रहती थी। हमारा देश धर्मप्रधान भूमि है। उसके कण कण में आत्म शक्ति, ब्रह्मतेज, प्रेम, कर्तव्य के प्रेरक प्रसङ्ग भरे पड़े है। हमारा देश अपने धर्म के उपयोग को, धर्म पर अमल करने के व्यावहारिक तत्व को भूलता जा रहा है। परिणाम यह है कि हम हर दृष्टि से पतन के गहरे गर्त में गिरते जा रहे हैं।

धर्म का दैनिक जीवन में उपयोग हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को समुन्नत कर सकता है। पुण्य भूमि भारत में धर्ममय जीवन व्यतीत करने से ही लोकमङ्गल करने वाली शक्तियों को प्रेरित किया जा सकता है। भौतिक क्षेत्र में कला, व्यवसाय, राजनीति, परिवार और समाज में उच्चतम लक्ष्य अर्जित किये जा सकते है। धर्म के सिद्धान्तों पर आचरण करने पर सर्वाधिक बल देने की आवश्यकता है।

धर्म के चारों तत्व— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन सबकी सार्थकता तभी है जब इन्हें पूरी निष्ठा के साथ अपने दैनिक व्यवहार

और कार्य में उतारा जाय। जब तक धर्म पुस्तकों के पन्नों में बन्द रहेगा या हमारे देवी देवता मठ मन्दिरों में बन्द पड़े रहेंगे, तब तक देश में फैली अराजकता व अशान्ति दूर नहीं होंगे।

मनुष्य "धर्म ! धर्म !" चिल्लाते हैं। धर्म की ऊंची-ऊंची चर्चायें करते हैं। धर्म का वाह्य आवरण बनाते हैं। मन्दिरों को बनाने में विपुल राशि व्यय करते हैं। घर पर धर्म के भजन कीर्त्तन कराते हैं, फकीरों के पास सत्सङ्ग के लिए जाते है, प्रत्येक मङ्गलवार को हनुमान जी के दर्शन करते हैं, लेकिन खेद है जिन ऊंचे सिद्धान्तों की वे उच्च स्तर में चर्चायें करते हैं, उन पर आचरण नहीं करते। हमारा धर्म बासी हो गया ! निष्प्राण और अनुत्पादक !!

हमारे धर्म ग्रन्थों में लिखा है 'धारण द्धर्ममित्याहुः' अर्थात् धर्म वह है जिसे धारण किया जाय। जिस पर स्वयं आचरण किया जाय। 'धर्मस्य तत्वं निहित गुहायाय, महाजनों येनगतः स पन्था।" अर्थात् जिस (प्रशस्त, उत्तम, लोकोपकारी) मार्ग को महापुरुषों ने अपनाया, जिस पर आचरण किया, जिस पद्धति के अनुसार कार्य किये, वही वास्तविक धर्म है।

आओ, हम धर्म को जियें!

गुरु ने पूछा, 'शिष्यों क्या तुम्हें कल का पाठ याद हो गया ? कल हमने कौन-सा पाठ याद करने के लिए दिया था भला ?'

शिष्यों में से आवाज आयी, 'सदा सत्य बोलो'—बस कल यही शिक्षा दी गयी थी हमें !

'क्या वह पाठ याद हो गया, तुम सबको ?' गुरु की वाणी में आशा का

स्वर मिश्रित था। उन्हें अपने कुशाग्र बुद्धि वाले कौरवों और पाण्डवों पर अभिमान था।

दुर्योधन ने उत्तर दिया, 'मुझे कल का पाठ याद हो गया, गुरुदेव !'

एक-एककर सभी शिष्यों ने उत्तर दिया, 'हमें कल का पाठ याद हो गया। बड़ा सरल काम था, सच बोला करो। हमने समझ लिया है।'

'अरे, यह कौन खड़ा है ?' सहसा गुरु ने एक शिष्य को खड़े देखकर पूछा।

'मुझे क्षमा करें। मुझे अभी कल का पाठ याद नहीं हुआ है।' युधिष्ठिर लज्जित थे।

कैसा मूढ है, यह शिष्य ! इतनी सहज साधारण बात इसके मन में नहीं बैठी।' गुरु खोज रहे थे।

क्यों, भला बताओ तो इसमें क्या कठिनाई आ रही है तुम्हें ? कौन बात समझ में नहीं आयी तुम्हारे ?' गुरु ने स्पष्टकरण मांगा।

'गुरुदेव, कठिनाई यह है कि मैं इस शिक्षा को अभी तक अपने दैनिक व्यवहार में नहीं उतार पाया हूँ। अभी अभ्यास चालू किया है, किन्तु दैनिक जीवन में कितनी ही बार झूठ बोलने को मन कर उठता है। सच बात स्पष्टता और निर्भीकता से कहने में उलझनें और उनके भारी परिणाम खतरनाक प्रतीत होते हैं। कितने ही दुष्टों से डर लगता है। ज्ञान का लाभ तो व्यवहार में है। जब तक मैं दैनिक जीवन और व्यवहार में इस ज्ञान का उपयोग एक आदत के रूप में करने न लगूँ, तब तक मुझे धर्मशिक्षा से क्या लाभ ?' युधिष्ठिर के तर्क से गुरुदेव प्रभावित हुए।

सच है, युधिष्ठिर ! जब हम तुम्हें कोई धार्मिक सिद्धान्त या नैतिक शिक्षा देते हैं, तो हमारी इच्छा यही रहती है कि पहले आप उस तत्व को दैनिक व्यवहार में उतारें, प्रतिदिन उस पर आचरण

करके उसे परखें, जीवन को उसके अनुरूप ढालें, और बाद में उसे पढ़ा या समझा हुआ मानें।

दृष्टान्त का आश्रय है कि धर्म दैनिक जीवन तथा नित्य के व्यवहार में आने की उपयोगी चीज है। धर्म का आधार हमारा सामाजिक और व्यवहारिक कर्म है। कर्म हमारी पूजा का आधार है। जिस धर्म से हमारे कर्मों को लाभ नहीं होता, जिस धर्म से समाज परिष्कृत, समृद्धिशाली, समुन्नत नहीं बनता, जिसे हम काम में नहीं ले सकते, उससे क्या फायदा ?

साधु वास्वानी ने ठीक ही लिखा है, 'नाना प्रकार से ईश्वर की पूजा की जाती है लेकिन श्रेष्ठतम यह है कि हम ईश्वर को जिएँ। उसे जीवन से पूजें। दीर्घकाल से, अतिदीर्घकाल से नर-नारी धर्म-विधियों, नाना व्रतों, अनुष्ठानों में—मन्दिर का घन्टा बजाने में, माला जपने में, बाह्याचारों में उलझे हुए है। यह कैसी विडम्बना है।

सच्चा ईश्वरपूजक वह है, जो दैनिक जीवन में ईश्वरेच्छा को उतारता है। जीवन प्रार्थना की कसौटी है। हमारा कर्म पूजा की कसौटी है। सबसे अच्छी प्रार्थना तो वह करता है, जो अपनी इच्छाओं ईश्वरीय नियमों के अनुरूप झुका देता है। कोरी भावना काफी नहीं है। महज भावुकता अध्यात्म नहीं है। दिखावे का कर्मकाण्ड धर्म नहीं है।

हम ईंट, पत्थर के मन्दिर चिनते हैं। लेकिन ऐसा करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि भगवान् जिस मन्दिर में आकर उसे पूजने और उसका प्रसाद पाने के लिए बुला रहा है, वह तो जीवन का मन्दिर है।

धर्म की उपयोगिता उसके अनुरूप दैनिक व्यवहार में है :

सभ्यता का आधार धर्म है। धर्म का आधार कर्म है। यदि हमारे दैनिक जीवन में धर्म नहीं उतरा, तो कोरे धर्म के आडम्बर से क्या लाभ ? धर्म का लाभ उसके व्यवहार में है।

हम दिखावे के लिए भगवान् को मन्दिर में घण्टी बजा-बजाकर निमन्त्रित करते हैं, भावावेश में तन्मय हो उठते हैं, लेकिन हम खेतों और कारखानों में भगवान् को याद रखना भूल जाते हैं। जबकि आज की विषय परिस्थितियों में, भूख और बेकारी की विवशता में हमारे खेतों, कारखानों को भगवान् की अधिक जरूरत है।

धर्म के मौलिक और आधार भूत नियम अधिक नहीं हैं। सत्य, न्याय, विवेक, प्रेम, दया, सहानुभूति, सेवा, सहायता, सहयोग सभी धर्म के अन्तर्गत आते हैं। बाहरी रूप में हर कोई इन शब्दों का अर्थ समझता है। लेकिन इनके अमल पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता है। यही हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है।

एक सत्य को ही ले लीजिये। अपने आपको धार्मिक कहने वाला हर व्यक्ति सत्य की खोज में लगा रहता है, किन्तु अमल कम या बिल्कुल ही नहीं करता है। जो महज सत्य की बातें मात्र करता है, उसके अनुसार कार्य नहीं करता, वह धर्म की दृष्टि से अच्छा नहीं करता। सत्य कोई छिपी हुई चीज नहीं है, जिसकी खोज की जाय। वह तो आकाश में चमकते सूर्य की भाँति देदीप्मान तत्व है। प्रत्येक की आत्मा उसे सच झूठ का आभास करा देती हैं, लेकिन जो समझ बूझकर भी सत्य का पालन नहीं करना चाहता, तो वह उपहास का पात्र है। असली बात अमल करना है। सत्य को प्रत्यक्ष और दैनिक जीवन में लाया जाय, तभी उसका महत्व और उपयोगिता है। अन्यथा सब ढपोलशंख जैसी शेखी बघारने जैसा मिथ्या है।

धर्म का एक रूप है गिरे पड़े पिछड़े बन्धुओं, जातियों, देशों, व्यक्तियों को ऊँचा उठाना या आगे बढ़ाना, मानव जाति के उत्थान एवं कल्याण के लिए निरन्तर अपने योग्य प्रयत्न करना। मानव-जाति के उत्थान और कल्याण के सब प्रयत्न धर्म के अन्तर्गत गिने जायेंगे। चिकित्सा तथा वैज्ञानिक अन्वेषण करने वाले बड़े-बड़े वैज्ञानिक और

डाक्टर, सही नेतृत्व करने वाले राजनीति या सामाजिक जीवन में, क्रान्ति पैदा करने वाले कर्मवीर भी धर्म की सेवा करने वाले कहे जायेंगे। मानव सेवा का पथ धर्म के कार्य की तरह कष्ट-साध्य है। उसकी सेवा करने वाला अपनी पवित्रता और उद्देश्य की एकनिष्ठा की अग्नि परीक्षा में से होकर गुजरता है।

दैनिक जीवन में परिष्कार करने वाले धर्म का ही सामाजिक महत्व कहा जा सकता है। धर्म वह है जो हमें पशुत्व से ऊँचा उठाकर मनुष्यत्व की कोटि में ला खड़ा करे। हमारे पशुत्व को दबाकर सच्चे मनुष्यत्व को विकसित करे। धर्म का उद्देश्य आदमी को पशु के खूंखारपन से बचाकर मनुशोचित सार्थक कार्यक्रमों में लगाना है। धर्म और मनुष्यता एक दूसरे के प्रतिरूप हैं। या यों कहिये कि व्यवहारिक धर्म का मतलब मनुष्यता है, अथवा मनुष्यता ही उपयोगी सामाजिक धर्म है। यह हम सामाजिक जीवन के नाना कर्त्तव्यों को करने की प्रेरणा देता है।

मनुष्य बने रहने का अर्थ है आत्म-भावना का परिष्कार। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसी को देवी सम्पद् के रूप में दिग्दर्शन कराया है। यह देवी सम्पद विकसित न करने से ही व्यक्ति और समाज की उन्नति हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, दान, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा अक्रोध, त्याग, शान्ति, सब पर दया, अनासक्ति, मृदुता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता तथा निरभिमानता ये सब गुण धारण करने और विकसित करने योग्य हैं। ये व्यवहारिक धर्म के रूप हैं। इन पर आचरण करने से ही धर्म का महत्व है। लाभ तभी है जब धार्मिक सिद्धान्तों पर अमल किया जाये।

हमारे साथ 'कोई' है !

आप अपने को शक्तिशाली समझ सकते हैं, जब आप यह विश्वास कर लें कि आपके अन्दर महान् शक्तिशाली ईश्वर विद्यमान है । आपकी ताकत का आदि स्रोत पार्थिव न होकर दैवी है । आप अपने को हाड़-माँस का लोथड़ा न मान कर सत चित्त आनन्द स्वरूप आत्मा का पवित्र मन्दिर माना करें ।

मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है । ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ सकता है, सागर की अतल गहराइयाँ नाप सकता है, आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ सकता है, और भाँति भाँति के चमत्कारी कार्य कर सकता है, किन्तु शर्त एक ही है । वह अपने अन्दर भगवान् की विद्यमानता में पूर्ण और अडिग विश्वास रखता हो ।

अपने अन्दर ईश्वर की विद्यमानता का विश्वास बढ़ाकर मनुष्य अपने स्वभाव की शुद्धि, आत्मचेतना का जागरण और काम क्रोध लोभ मोह के दूषित आवरणों को दूर किया जा सकता है । दैवी तत्त्व से एकता का अर्थ अपने जीवन को पवित्र, सुखी, सन्तुष्ट और ठीक दिशाओं में सुविकसित बनाने का मार्ग है ।

अब ईश्वर के प्रति मेरी आस्था और भी गहरी हो गई !

जेम्स इर्विन नामक चाँद पर उतरने वाले चन्द्रयात्री के नीचे लिखे अनुभव सुनिये, कितने प्रेरणादायक हैं !

"चाँद पर उतरने के बाद मुझे लगातार यह अनुभव होता रहा कि मेरे साथ 'कोई' दैवी शक्ति सहायता के लिए साथ है । यह गुप्त ईश्वरीय शक्ति मुझे पुत्रवत् सहायता की दृष्टि से देख रही है । कई

बार चन्द्रमा पर उतरकर नई खोजें करने का अपना कठिन काम हमें असंभव सा लगता था, पर आश्चर्य इस बात का था कि सदैव ऐन मौके पर सब कुछ ठीक हो जाता था। यह ईश्वर की शक्ति ही थी जो हमें आत्मबल दिये हुए थी। अपोलो—१५ अभियान ने ईश्वर में मेरी आस्था को कुछ और मजबूत बना दिया है। चाँद पर उतर जाने के बाद मुझे लगातार ऐसा महसूस होता रहा कि मेरे साथ मेरा कोई रक्षक जरूर है। वह हर मुसीबत में मेरा रक्षण कर रहा है। मैं नहीं समझता कि मेरा यह विश्वास इस वैज्ञानिक तथ्य के कारण था कि मुझे हर क्षण टेलीविजन पर देखा जा रहा है। नहीं ! इस बात को तो मैंने बिल्कुल अपने दिमाग से निकाल ही दिया था। मेरी धारणा है कि जीवन की कठिन घड़ियों में कई बार हमें अपना काम असंभव सा लगता है, पर हमेशा ऐन मौके पर ईश्वरीय शक्ति की सहायता से सब कुछ ठीक हो जाता है। शायद इस अदृश्य प्रेरणा-स्रोत के कारण ही हम सभी काम पूरे कर सके, जिसके लिए हमें चाँद पर खोज करने के लिए भेजा गया था।"

यह है ईश्वर की शक्ति का चमत्कार !

बहुत बार ऐसा होता है कि मनुष्य ईश्वर की विद्यमानता के सत्य को समझता हुआ भी निरर्थक तर्कों में पड़कर भटक जाता है। इसका उपचार है अपने आप को भगवान् के हाथों में सौंप दिया जाये। स्मरण रहें, मनुष्य ज्यों ज्यों परमात्मा के प्रति आत्म-समर्पण करेगा, त्यों त्यों उसे स्वतः अन्तर से सानिध्य और पथ-प्रकाश प्राप्त होगा और वह भगवान् की अधिकाधिक अनुभूति पाने लगेगा।

आपका धर्म आपको क्या सिखाता है ?

मैं पूछता हूं, "आपका धर्म आपको क्या सिखाता है ?"

आप नियमित पूजा पाठ, संध्या, वन्दना, कीर्त्तन इत्यादि करते हैं। अनेक उपवास रखते हैं। नियमित व्रत करते हैं। सब धार्मिक अनुष्ठान करते हैं और अपने आपको धार्मिक कहने में गर्व का अनुभव करते हैं।

लेकिन आपके मन में शान्ति नहीं है। आप दूसरे की तनिक सी कड़वी बात को भी नहीं सहन कर पाते। घर और समाज में आप दूसरे से निभाव नहीं कर पाते। बात-बात पर दूसरों से झगड़ा करते हैं। तनिक सी बात पर दूसरों को गन्दी गलियाँ देते हैं। घर के सदस्यों तथा परिवार वालों से प्यार नहीं करते, आस-पास वालों को आपसे कुछ भी लाभ नहीं है। तो फिर आपके धर्म से क्या लाभ ?

आप बिना नागा मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिए जाते हैं। वहाँ भगवान् की मूर्ति पर बड़ी श्रद्धा से पुष्प और नैवेद्य चढ़ाते हैं, भगवद्भक्ति में गद्गद् हो उठते हैं। आपके मस्तक पर भक्ति का प्रतीक चन्दन का भव्य टीका लगा हुआ है। यह आपकी प्रगाढ़ धार्मिकता का स्पष्ट प्रमाण है। बाहर से सभी आपको परम भक्त पवित्र आत्मा कहते हैं।

लेकिन मन्दिर के द्वार पर आये हुए अन्य व्यक्तियों से आप मीठा नहीं बोलते, भिखारियों को कुवचन और कुशब्दों का उच्चारण करते साफ निकल जाते हैं, गरीबों से घृणा करते हैं। तो फिर आपके धर्म से समाज को क्या लाभ ?

आप जन्माष्टमी, रामनवमी या दुर्गा पूजा के अवसरों पर भगवान् श्रीकृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, भगवती, दुर्गा इत्यादि देवताओं की मूर्तियां बड़े प्रेम श्रद्धा और अनुराग से सजाते है। आपके घर ही में देवी-देवताओं के भावपूर्ण चित्रों और मूर्तियों से सुसज्जित एक छोटा सा मन्दिर भी है। आप उसमें बैठकर सुख का अनुभव करते हैं। झाँकियाँ सजाते हैं। कीर्त्तन के लिए अपने मुहल्ले के भद्र सज्जनों को निमन्त्रित करते हैं। आपके धर्म की दूकान सबसे अच्छी और आकर्षक सजी हुई है।

लेकिन आपके मन में दूसरों से पुराना बैर निकालने के लिए भट्टी जल रही है, उसके विरोध में षड़यन्त्र की आप नई योजनायें तैयार कर रहे हैं। अपने व्यापार में कम तोलने और मिलावट करने के नित नए तरीके सोच रहे हैं। बाटों को घिसकर रत्ती भर माल तोलने की तरकीब चला रहे हैं ' अपने दफ्तर में रिश्वत ले अनुचित तरीकों से रुपया हड़पने की एक से एक चतुर तरकीब आपको याद है। मौका देखकर आप उसे काम में ले ही लेते हैं। पास-पड़ौस तथा इष्ट-मित्रों तक से रुपया ऐंठने में नहीं झिझकते। आपका अपना ऐसा गुट है, जो योजनाबद्ध तरीकों से रुपया उड़ाता है। फिर बतलाइये आपके धर्म से क्या लाभ ?

आप मन्दिर के पुजारी हैं। असंख्य भावुक भक्त, युवती, स्त्रियां बच्चे ईश्वर की मूर्ति के दर्शनों के लिए मन्दिर में एकत्रित होते हैं। उनकी भीड़ की भीड़ दर्शनों के लिए आतुर रहती है। आप 'रामनाम' का अगोछा ओढ़े, मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण किये, रुद्राक्ष की माला गले में डाले आरती करा रहे हैं। सभी भक्तों की दृष्टियां आप पर टिकी हुई हैं।

लेकिन आपका मन उस युवती, स्त्री के रूप यौवन में क्यों डूब-उतरा रहा है। आप वक्र दृष्टि से उस भक्तिन के नखशिख को, शृंगार

और यौवन को क्या देख रहे हैं ! ईश्वर की प्रतिमा के समक्ष पुष्प और नैवेद्य अर्पित करते हुए उसके मेंहदी रचे कोमल हाथों के स्पर्श सुख के स्वप्न आप भला क्यों देख रहे हैं ?

आप समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए एक नया गगन चुम्बी भगवान का मन्दिर बनवा रहे हैं। दिन रात आपकी ओर से भजन, पूजन की व्यवस्था है। भिखारियों और विधवाओं को दान देने, भोजन कराने की व्यवस्था है।

लेकिन जितना आप मन्दिर पर व्यय कर रहे हैं, भ्रष्टाचार और धोखेबाजी की भी उतनी ही बडी और कुशल योजनायें आपके मन में चल रही हैं। नकली घी से समाज को ठगने की नई तरकीबें आपने खोज निकाली हैं।

एक ओर आप दान देने, गरीबों की सहायता करने तथा दहेज टीका ठहराव इत्यादि में न फँसने की बातें करते हैं, पर दूसरी ओर चुपचाप अपने पुत्र के विवाह पर कन्या पक्ष से अधिक दहेज और रुपया भिन्न २ तरीकों से निकालना चाहते हैं। फिर आपका उपदेश किस अर्थ का है ?

जिस धर्म से जीवन में शान्ति, सुव्यवस्था, सदाचार और इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं आता, वह धर्म नहीं ढोंग है। हाथी के निकले हुए दाँतों या बकरी के गले में लटके हुए निर्जीव थनों की तरह दिखावा मात्र है। फिर सच्चा धर्म क्या है ?

इसका उत्तर यह है कि धर्म से जीवन में आमूल परिवर्तन होना चाहिए मन में शान्ति और तृप्ति की भावना होनी चाहिए, इन्द्रियों पर पूरा नियन्त्रण होना चाहिए और यह सब व्यावहारिक होना चाहिए।

सच्चा धार्मिक व्यक्ति वह है जो—

प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छवः॥

दयार्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः ।
गुणेषु परकीयेषु पक्षपातसमन्विताः ॥
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ।
पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः ॥
दीनानुकम्पिनों नित्यं भृशं परहितैषिणः ।
× × ×
विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते ।
वितन्वते हि तां प्रीतिं शतकोटिगुणां हरौ ॥
(वैष्णव० पु० मा० १० । १००–१०४)

अर्थात् उनका चित्त अत्यन्त शान्त रहता है, वे सबके प्रति कोमल भाव रखते है, अपनी इन्द्रियों पर यथेष्ट विजय प्राप्त किये रहते है तथा मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी दूसरों से द्रोह करने को इच्छा नहीं रखते ।

सच्चे धार्मिक व्यक्ति का चित्त दया से पिघला रहता है, वे चोरी और हिंसा से सदा ही मुख मोड़े रहते हैं । उनका शत्रु के भी गुणों में पक्षपात रहता है ।

सदाचार से उनका जीवन सदा उज्ज्वल (निष्कलंक) बना रहता है, बना रहता है, वे दूसरों के उछाह को अपना उछाह मानते हैं तथा सभी प्राणियों के भीतर भगवान् वासुदेव को विराजमान देखकर कभी किसी से ईर्ष्या द्वेष नहीं रखते ।

दीनों पर दया करना स्वभाव होता है और वे सदा परहित—साधन की अधिक से अधिक इच्छा रखते हैं । अविवेकी पुरुषों का विषयों में जैसा प्रेम होता है, उससे अरबगुनी अधिक प्रीति वे भगवान् श्रीहरि के प्रति करते हैं ।

महात्मानोऽनुगृह्णन्ति हिंसामानान् रिपूनपि ।
सपत्नी प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ।

सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छिन्नोऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुख कुठारस्य ॥
दैवं परं विनश्यति तन्वपि न श्रीनिवेदितं तत्सु ।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कला शिरसि या शम्भोः ॥
ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता ये साधुतामनुपकारिषु दर्शयन्ति ।
आत्मप्रयोजनवशात्कृतछिन्नदेहपूर्वोपकारिषु खलोऽपि हितानुरक्तः ॥

(पद्म उत्तर ८ । २२–२५)

अर्थात् सच्चे धर्म का पालन करने वाले वे हैं जो हिंसा करने वाले शत्रुओं पर भी कृपा ही करते हैं । पर्वतों से निकलकर बहने वाली २ नदियां अपनी सौत रूपी सहायक नदियों को भी समुद्र में मिला देती हैं । इसी प्रकार परोपकार रत सच्चे धार्मिक पुरुष मरते समय तक भी अपने मृदु और उत्तम स्वभाव का परित्याग नहीं करते अर्थात् मरते दम तक दूसरों का हित ही करते रहते हैं ।

चन्दन के वृक्ष को देखिये । चन्दन काटे जाने पर भी काटने वाली कुल्हाड़ी की धार को सुगन्धित कर देता है ।

प्रारब्ध कर्म का चाहे बिना भोगे ही क्षय हो जाय—जो असम्भव है, परन्तु जो वस्तु सत्पुरुषों को अर्पण करदी जाती हैं, वह स्वल्प होने पर भी अक्षय हो जाती है ।

चन्द्रमा की जो कला भगवान् शङ्कर के मस्तक पर सुशोभित होती है, वह बच जाती है—उसका क्षय नहीं होता । वे ही सत्पुरुष त्रिभुवन में श्रेष्ठ हैं, जो उपकार न करने वालों के साथ भी साधुता का ही आचरण करते हैं । अपने लिए अङ्गों को कटा देने वाले पहले के उपकारी के प्रति तो दुष्ट पुरुष भी हित और प्रेम का ही बर्ताव करते हैं ।

धर्म हमारे दैनिक जीवन में व्यवहार और प्रयोग की चीज है, दिखावा मात्र नहीं है । हम धार्मिक हैं, तो उससे हमें सदा शान्ति,

सन्तुलन, विपत्ति में धैर्य, सङ्कट में प्रेरणा और अन्धकार में प्रकाश मिलना चाहिये।

हम सबका धर्म पृथक-पृथक है। धार्मिक नियमों का प्रयोग हम सब स्वयं अपने निजी उद्देश्यों और आदर्शों से करते हैं। हमारे धर्म को वे तत्व सिखाने चाहिए, जो मानव के सर्वोत्तम तत्व हैं। बुराई धर्म के नियमों में नहीं, प्रत्युत हममें है, जो उनका दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।

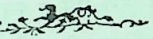

धर्म-बुद्धि की अवहेलना से मानसिक क्लेश

प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय तत्व विद्यमान है, जो उसे धर्म और अधर्म, भले और बुरे, उचित और अनुचित का विवेक कराता है और निरन्तर सत्य मार्ग पर चलते रहने की प्रेरणा देता है। इस नीर-क्षीर विवेक शक्ति को हम धर्म-बुद्धि कह सकते हैं। ईश्वरीय दैवी विधान का स्वरूप कुछ ऐसा है कि सत्य, नीति और धर्म के मार्ग पर चलते रहने से हमें मानसिक और आत्मिक शान्ति मिलती है। इसके विपरीत असत्य, झूठ, पाप, अनीति, मिथ्याचार के रास्ते का अनुसरण करने से मानसिक क्लेश उत्पन्न होता है। नाना प्रकार की चिन्तायें व्यर्थ ही सताती रहती हैं।

धर्मबुद्धि प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही होती है, पर कुछ व्यक्ति अपनी परिस्थितियाँ ऐसी बना लेते हैं कि वे उसके संकेत को नहीं सुनते। पर्याप्त समय तक समस्या पर सोच विचार नहीं करते। धार्मिक दृष्टि से निर्णय नहीं करते। फल यह होता है कि धीरे २ धर्म-

बुद्धि का क्षय हो जाता है। यदि निर्णयों में धर्म के प्रतिकूल आचरण करना पड़ जाता है। धर्मबुद्धि को दबा कर प्रतिकूल निर्णय और आचरण से मनुष्य को हानि या प्रतिशोध का गुप्त डर बना रहता है। मनुष्य चिन्ता में घुलता जाता है। शूल की तरह धर्म बुद्धि के प्रतिकूल आचरण मनुष्य में भय, चिन्ता, बुरे स्वप्न, हृदय की धड़कन, सिर दर्द और अशान्ति पैदा करता है।

एक बार महाराज हरिश्चन्द्र कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय न कर सकने के कारण चिंता में फँस गये। क्या उचित क्या अनुचित है, यह न सोच सकने के कारण वे मानसिक क्लेश से पीड़ित थे। उसका मन अशान्ति से भरा हुआ था। मोह का पर्दा उन पर बुरी तरह छाया हुआ था। महारानी शैव्या ने इन शब्दों द्वारा उनके मानसिक क्लेश का निराकरण किया और धर्म बुद्धि को जाग्रत किया—

"त्यज चिन्ता महाराज स्वसत्य मनुपालय।
श्मशानवद् वर्जनीयो नरः सत्य बहिष्कृतः ॥
नातः परतरं धर्म वदन्ति पुरुषस्य तु।
यादृशं पुरुषव्याघ्रं स्वसत्यपरिपालनम् ॥
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥
सत्य मत्यन्त मुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
ताराणायनृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम् ॥

मार्क० ८।१७-२०

महारानी शैव्या ने अपने पति महाराज हरिश्चन्द्र से कहा—

"महाराज ! चिन्ता छोड़िये। अपने सत्य की रक्षा कीजिए। जो मनुष्य सत्य से विचलित होता है, वह श्मशान की भाँति त्याग देने योग्य है।

हे नरश्रेष्ठ ! पुरुष के लिए अपने सत्य की रक्षा से बढ़कर कोई धर्म नहीं बतलाया गया है।

जिसका वचन निरर्थक हो जाता है (जो धर्म बुद्धि के अनुसार कर्तव्य निश्चित नहीं करता), उसके अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा दान आदि सम्पूर्ण निष्फल हो जाते हैं।

धर्मशास्त्रों में बुद्धिमान पुरुषों ने (धर्मबुद्धि द्वारा पोषित) सत्य को संसार सागर के तरने के लिए सर्वोत्तम साधन बताया है। इसी प्रकार जो धर्मबुद्धि की अवहेलना करता है, जिसका मन वश में नहीं है, ऐसे पुरुषों को पतन के गर्त में गिराने के लिए असत्य को ही प्रधान कारण बतलाया गया है। धर्मबुद्धि के अनुसार काय करना ही जीवन का सबसे बड़ा लाभ है।

आसक्ति रहित धर्मबुद्धि द्वारा ही आचरण करना चाहिए। धर्म के पालन से, प्रतिदिन के कार्यों में धर्म प्रयोग करने से मनुष्य के अन्त: करण की शुद्धि होती है। सब प्रकार के क्लेश दूर होते हैं। धर्म केवल पुस्तकों में पढ़ने मात्र की ही वस्तु नहीं है, प्रत्युत नित्यप्रति के जीवन में उतारने की वस्तु धर्म बुद्धि के अनुकूल आचरण करने से मनुष्य दैनिक व्यवहार में कोई गलती नहीं करता, जिसके लिए बाद में प्राय-श्चित करना पड़े।

मनुष्य के मन की अनेक वृत्तियाँ हैं—स्वार्थवृत्ति, भोगवृत्ति, दम्भ-वृत्ति और धर्मवृत्ति। जब कोई समस्या सामने आती है, तो इन नाना वृत्तियों में संघर्ष चलने लगता है। जब जिस वृत्ति की प्रधानता या प्रभुत्व होता है, तब वैसा ही निर्णय हो जाता है लेकिन मन के शान्त संतुलित अवस्था में आते ही पाशविक वृत्तियों के निर्णय की असत्यता प्रकट हो जाती है। तब धर्मबुद्धि अपना दिव्य प्रकाश दिखलाती है। उसमें हमें भोग वृत्तियों की निस्सारता प्रकट हो जाती है। पाश्चाताप होता है और धर्मबुद्धि इस कुकृत्य की सजा देती है। मनुष्य को स्वय

अपने आप ही ग्लानि हो जाती है। आत्म-भर्त्सना के फलस्वरूप अनेक व्यक्ति आत्म हत्यायें तक कर लेते हैं।

धर्मबुद्धि के पालन से चरित्र में सद्गुणों का विकास होता है। धर्मबुद्धि का सुख अमल में है, केवल ज्ञान में नहीं। धर्म को दैनिक जीवन का आधार बना लेने से ही जीवन सुखद और फलदायी हो सकता है। धर्मबुद्धि के विकास से चित्त की शुद्धि, विचारों की पवित्रता ओर आचरण की स्वच्छता आती है।

जब आप पूरी तरह शान्त रहते हैं, मन सन्तुलित रहता है, किसी प्रकार का बाहरी दबाव आप पर नहीं होता, तो आपके मन-मन्दिर में भगवान् उदित होते हैं और आपको नेक सलाह देते हैं। इसी पर निरन्तर अग्रसर होते रहिए। ईश्वरीय प्रेरणा पर भरोसा रखने वाला कठिन अवसरों पर भी नेक सलाह पाता है भविष्य उसके लिये अन्धकार की वस्तु न रहकर एक दिन जैसा स्पष्ट रहता है।

मनुष्य का देवत्व कभी न कभी जोर मारता है !

एथेन्स निवासी विचारक सुकरात ग्रीस के सबसे बड़े तत्वज्ञानी थे। इन्होंने अपना जीवन—नवयुवकों को नीति तथा आचरण सम्बन्धी शिक्षा देने तथा सद्गुणों से प्रेम करने में व्यतीत किया था। वे कहा करते थे, "लोग जब चाहे अन्धकार से प्रकाश, अनीति से नीति, पाप से धर्म की ओर चल सकते हैं। अच्छाई की तरफ बढ़ना आदमी के संकल्प की बात है।"

एक दिन एथेन्स में एक चतुर ज्योतिषी आया, जो इस बात के लिए प्रसिद्ध था कि मैं किसी भी आदमी का चेहरा देखकर उसका चरित्र बता सकता हूँ। मैंने अनेक व्यक्तियों के चेहरे देखकर उनके स्वभाव, आदतों और प्रारम्भिक जीवन की सही सही बातें बताई हैं।

इस व्यक्ति की परीक्षा लेने के लिए सुकरात के उपदेश सुनने वाले तथा उनके अनुयायियों ने उस नवयुवक को चुपके से बुलाया और सुकरात की ओर संकेत करके कहा, 'कृपया इस व्यक्ति के चरित्र और आदतों के विषय में बतलाइये कि वे कैसे हैं ?"

सुकरात की शक्ल सूरत भद्दी थी। वे अत्यन्त कुरूप थे, रङ्ग काला, शरीर बेढंगा ऊबड़ खाबड़ और बुरी तरह फैली हुई मूँछें दाढ़ी! खूबसूरती नाम की कोई चीज उस चेहरे में कहीं नजर न आती थी, जैसे ईश्वर ने जल्दी में उसे बनाकर पाप काट दिया हो !

फिर, सुकरात जीवन की संध्या में थे। बुढ़ापा जैसे उनका उपहास कर रहा था। वह विशेषज्ञ बड़ी बारीकी से कुछ देर तक सुकरात के चेहरे का सूक्ष्म अध्ययन करता रहा। सोच विचार कर उसने अपना निर्णय इन शब्दों में दिया—

"यह वृद्ध अनेक दुर्गुणों से भरा, सड़े दिमाग तथा चिड़चिड़े स्वभाव का है। इसमें दंभ और जिद्दीपन है। यह अपनी समझ को सबके ऊपर रखने वाला अहंकारी है। दूसरे की कुछ भी नहीं सुनना चाहता है। ऐसे आदमी समाज के लिए सर दर्द बनते हैं।"

यह निर्णय सुकरात जैसे साधु स्वभाव के विचारक के बिल्कुल प्रतिकूल था। उनके शिष्य अपने गुरु के सद्गुणों, विचारशक्ति और शान्त स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे।

उन्होंने हँसी हँसी में उस विशेषज्ञ के निर्णय अपने गुरु से कहे।

इस पर सुकरात ने मुस्कराते हुए स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया—

"सच बात तो यह है कि यह विशेषज्ञ मेरे बचपन के प्रारम्भिक

चरित्र के सम्बन्ध में कोई भी गलत बात नहीं कह रहा है। प्रारम्भ में मेरा झुकाव बुराई तथा दुष्टता की ओर विशेष रूप से था। मैं लोगों से तनिक तनिक सी बात पर झगड़ता था। बिना मतलब ही सबको परेशान करता था। अहंवादी और दुष्ट था।

लेकिन एक बार मुझे लगा कि मैं गलती पर हूं। मेरी कुप्रवृत्तियाँ बढ़कर मुझे राक्षस ही बना देंगी। मैं दानव बनकर सजा पाऊँगा। फिर क्यों न अपने आपको अच्छे रास्त पर लगाऊँ ? मुझे जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।

मैंने अपने उद्दण्ड स्वभाव पर नियन्त्रण करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उग्र स्वभाव को अभ्यास से सहनशील बनाने लगा। पहलेतो मुझे लोगों के कटु वचन बहुत बुर लगते थे, लेकिन अभ्यास से मन शान्त रहने लगा मेरी कुप्रवृत्तियां दब गई और दैवी गुण उभरने लगे। विचार शक्ति बढ़ने लगा। मैंने मौलिक दृष्टि से सभी विषयों पर विचारना शुरू किया। अब मेरा वह पुराना उग्र और उद्दण्ड स्वरूप बिल्कुल दब गया है और मैं बदलकर सन्त बन गया हूँ। मेरी जिन्दगी का निचोड़ यह है—

"जो अच्छा है, उसी को विकसित करो। जो बुरा है, उसे तुरन्त छोड़ो, अपना हो या पराया।"

यद्भद्रं तन्न आसुव (यजुर्वेद ३०।३)

केवल श्रेष्ठ चरित्र वाले व्यक्ति ही जनता के नेता बनें। समाज का नेतृत्व चरित्रहीन लोगों के हाथों में नहीं पहुंचना चाहिये।

आ देवानाम भवः केतुरग्ने।—ऋग्वेद ३।१।१७

अच्छे गुणों के विकास का उपाय दीर्घकालीन अभ्यास है। अनेक बार जिस अच्छी आदत को बार-बार दोहराया जाता है, वही स्वभाव का स्थायी अङ्ग बन जाता है। पुनरावृत्ति से दिव्य गुण निखरने लगते हैं, कठिनाइयाँ और अड़चने दूर होने लगती हैं और नये-नये तत्त्व

प्रकाश में आने लगते हैं । अभ्यास और लगन—इन दोनों उपायों से स्वभाव बखूबी बदला जा सकता है ।

अभ्यास एक प्रकार का मानसिक मार्ग है। यदि मन में अच्छा बनने का दृढ़ संकल्प कर लिया जाय, तो अभ्यास सरल हो जाता है। जब हम पहले कोई नया, अच्छा कार्य हाथ में लेतें हैं, तो मन पहले झिझकता है, अड़ता और अकड़ता है, पर फिर नये मार्ग पर चलने ही लगता है ।

दृढ़ निश्चय से आदमी अपने दुष्ट स्वभाव पर नियन्वण कर उसे शुभ दिशाओं में मोड़ सकता है ।

हिंसक शासक से बौद्ध भिक्षु

सम्राट अशोक का आरम्भिक जीवन आवेश, क्रोध, उत्तेजना और महत्त्वाकांक्षा से परिपूर्ण था । वे युद्ध द्वारा भारत में अपना आतंक उत्पन्न करना चाहते थे । राज्य-विस्तार के लिए उन्होंने हिंसा, युद्ध और मारकाट का वह घिनौना और पशु प्रवृत्तियों वाला मार्ग अपनाया था, जो सदा से रक्तपात, वृहत् संख्या मे हत्या और विध्वंश का कारण बना है । उन्होंने छोटे-छोटे अनेक राज्यों को हिंसा और पाशविक बल से अपने राज्य में मिलाया । अन्त में कलिंग नाम के राज्य पर उन्होंने बड़े पैमाने पर आक्रमण किया । इसमें बहुत दिनों तक लड़ाई चली, मारकाट हुई, असंख्य हत्यायें हुईं । वहाँ के निवासियों ने प्राणपण से रक्षा की चेष्टा की, पर अशोक की सैन्यशक्ति के सामने पराजित हुए । आर्त प्राणियों के हाहाकार से पूरा भू-भाग सिसकने लगा । धरती रक्त से लाल हो गई । अशोक को यह विजय विपुल नर-संहार के बाद प्राप्त हुई । उसकी महत्वाकांक्षा की तृप्ति हुई । उसका अहं संतुष्ट हुआ ।

वह समझता था कि यह उसकी प्रसिद्धि का चरमोत्कर्ष है । अब उसके करने के लिए कुछ भी नहीं है । अपनी विजय को खुशी में भरा

हुआ वह कलिंग युद्ध भूमि देखने गया। उसके मन में बैठा हुआ राक्षस नर-संहार को देखकर मानसिक तृप्ति चाहता था।

अशोक ने देखा, 'चारों ओर से रोने की हृदय-विदारिणी करुण चीत्कारें सुनाई पड़ रहीं हैं। मातायें युद्ध में मरे हुए अपने पुत्रों के लिए विलाप कर रही हैं। पत्नियाँ अपने पतियों की मृत्यु पर कुहराम मचाये हैं। रक्त से सारी धरती सनी पड़ी है। मरे हुए नर-शरीरों से युद्ध-भूमि पटी हुई हैं। चील और कौवे लाशों को नोच-नोच कर खा रहे हैं। वातावरण भयङ्कर दुर्गन्धि से भरा हुआ है।'

यह मरघट देखकर अशोक के मन में उथल-पुथल पैदा हुई। वह सोचने लगा, 'तनिक सी अहंतृप्ति और अपने बड़प्पन की पूर्ति के लिये मैंने अपनी शासकीय शक्तियों का दुरुपयोग किया है। इतनी बड़ी संख्या में लोगों की हत्या करदी है। इन सबकी मौतें सिर्फ मेरे कारण ही हुई हैं। मैंने अपनी प्रसिद्धि के कारण लाखों व्यक्तियों के टुकड़े-टुकड़े करवा दिये हैं। सबका दोषी मैं हूं। इसका पाप मेरे ऊपर है।

जिस प्राणी को मैं उत्पन्न नहीं कर सकता, उसके प्राण लेने का मुझे क्या अधिकार है ? यह हत्या है। यह पाप है। इसकी सजा मुझे मिलेगी··· आज नहीं तो कल, परसों, एक साल दस साल में, जीवन के आखरी भाग में मुझे जरूर इन हत्याओं का भागी ठहराया जायेगा। ईश्वर मुझे इस बड़े पाप की सजा देगा। मुझे नर्क में जाना होगा और असंख्य कठोर यातनायें भुगतनी होंगी।··· हाय, यह मैं कैसा बड़ा पाप कर बैठा।'

वह पश्चाताप से जलने लगा। अपने पाप कर्म पर दुःख अनुभव करते करते वह अपने पूरे चरित्र पर सोचने विचारने लगा मानों अब तक का उसका जीवन एक खूंखार शेर भेड़िये जैसा हिंसात्मक था। उसमें मारकाट, खूंरेजी, नरहत्या, रक्तपात और लड़ाई झगड़े के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। उसमें लाभ कुछ नहीं था, दुनिया को नुकसान

ही नुकसान था। यह जीवन जानवरों के योग्य हो सकता था ईश्वर का पुत्र कहलाने वाले मनुष्य के लिए किसी प्रकार भी उचित नहीं था।

उसके मन में वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि जिन्दगी को फिर नये सिरे से प्रारम्भ करना चाहिये। जब जागे, तभी सवेरा मानना चाहिये।

उनका सत्-पथ पर परोपकारमय जीवन व्यतीत करने का संकल्प बन गया। अब वे धीरे-धीरे उत्तम जीवन के मार्ग ढूँढन लगे। उन्होंने विद्वानों का सत्सङ्ग प्रारम्भ किया, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने शुरू किये और अपने स्वभाव को शान्त, सन्तुलित, प्रेममय, परोपकारमय बनाना चालू कर दिया। अभ्यास से क्या नहीं होता ! धीरे-धीरे उनका स्वभाव हिंसा से अहिंसा, घृणा से प्रेम, उग्रता से शीतलता, दंभ से विनयशीलता तनाव से भाव, दया, शान्ति, सेवा, क्रोध से व्यापक करुणा की ओर ढलने लगा, क्रमशः बदलने लगा, यों कहिये, जीवन की पाठशाला में फिर नये सिरे से अ आ ई सीखने लगा।

वर्षों तक यह क्रम चलता रहा।

अब हिंसक अशोक बदलकर साधु स्वभाव, करुणा, दया, प्रेम और परोपकार से भरा हुआ प्रियदर्शी बौद्ध-धर्मावलम्बी बन गया था। युद्ध द्वारा विजय स्थायी करने की जगह उसने प्रेम, शान्ति; मैत्री और धर्म के द्वारा स्थायी शान्ति प्राप्त करना ही श्रेष्ठ समझा।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य बदल सकता है। मनुष्यों में अनेक परिवर्तन हुए हैं और उन्होंने अपने को नये-नये रूपों में ढाला है। नया मोड़ प्राप्त किया है और बिल्कुल नये रूपों में लोगों के सामने प्रसिद्ध हुए हैं।

मनुष्य ईश्वर का पुत्र है। जिसमें ऊपरी स्तर पर भले ही दुष्प्रवृत्तियों का मैल जमा रहे, किन्तु उसके हटते ही वह अपने शुभ सात्विक

रूप में प्रकट हो जाता है। बस, सद्गुणों को अंकुरित करने का निश्चय चाहिए।

कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से बुरा नहीं होता। उसमें से अच्छाई खोज कर निकाली जा सकती है। रेगिस्तान में नखलिस्तान की हरी दूब और ठन्डी छाया की तरह सात्विक संस्कार दबे रहते हैं। यदि सयोग-वश कोई नया शुभ आघात लगे, तो ये दैवी गुण जाग सकते हैं।

घोर कामुक से संयमशील कवि

युवक तुलसीदास अपनी नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम में अति अनुरक्त थे। यौवन का प्रभात और सुन्दरी पत्नी, वासना का ताण्डव हो रहा था। कामातुर हो वे विवेक-अविवेक का भेदभाव भूल बैठे थे। एक बार वे युवती पत्नी के प्रेम में विह्वल बिना बुलाये ही अपनी ससुराल में पहुँच गये। पत्नी को अपने पति की अति कामुकता पर बड़ी लज्जा आयी। वह शर्म से जैसे गड़ गयी! मन ही मन बड़ी क्रुद्ध हुई। जब न रहा गया, तो हारकर अपने पति से बोली, 'ऐसी कामुकता और निर्लज्जता तो पशुओं में पायी जाती है। आपको अपनी वासनाओं को नियन्त्रण में रखना चाहिए। कामुकता तो मनुष्य के लिए लज्जा और अपमान का कारण है। आपकी जैसी अनुरक्ति इस हाड-माँस के शरीर के प्रति है, वैसी यदि भगवान् राम के प्रति होती, तो आपके साथ हम सबका भी उद्धार हो जाता।'

उस दिन तुलसी को अपनी कामुकता पर सचमुच लज्जा आ गयी। नारी का एक-एक शब्द उनके मन में काँटों की तरह चुभ गया।

पाश्चात्ताप और प्रायश्चित के रूप में उन्होंने संकल्प किया कि वे अपने कामुकता की दुर्बलता को जीतेंगे। इन्द्रियों को नियन्त्रित कर कामवासना का परिष्कार करेंगे। काममेसवन नहीं करेंगे।

प्रायश्चित रूप में उन्होंने भगवान् राम की भक्ति का मार्ग लिया। साहित्य और भक्ति के योग से उन्होंने ऐसा मार्मिक काव्य

निर्माण किया जो आज भी उनकी कीर्त्ति अमर किये हैं। यदि तुलसी दृढ़ संकल्प द्वारा भक्तिरस में विकसित न होते, तो एक निर्लज्ज बनकर रह जाते, लेकिन उन्होंने धैर्य से अपने स्वभाव को बदल डाला। नये पवित्र सस्कार बनाये, काम-भावना का निराकरण किया। दीर्घकालीन अभ्यास से उनकी कामुकता भक्ति, वैराग्य और पवित्र चिन्तन में बदल गयी। एक युग ऐसा आया, जब लोग उनके प्रारम्भिक जीवन को भूल गये।

मूढ़ से विद्वान बने

एक राजकुमारी को अपनी विद्वता और ज्ञान का बड़ा गर्व था। वास्तव में उसने अपना अधिकांश समय अध्ययन और उच्च मौलिक चिन्तन में लगाया था। योग्यता कूट-कूटकर भरी थी। बड़े-बड़े पण्डित भी उसे शास्त्रार्थ में परास्त नहीं कर सकते थे। उसकी विद्या, बुद्धि, क्षमता और कुशाग्रता देखकर पण्डितों ने कहा, 'कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए कि इस राजकुमारी का गर्व चूर्ण हो जाय।'

उधर उस राजकुमारी ने यह प्रण किया था कि मैं उसी विद्वान् से विवाह करूँगी, जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा।

बड़े-बड़े विद्वान् आये और पराजित होकर भाग गये।

ब्राह्मणों ने सोचा, 'किसी प्रकार इस राजकुमारी का विवाह किसी जड़ मूर्ख से हो जाय, तो इसे चिढ़ाने का अच्छा मौका मिलेगा।'

वे किसी मूर्ख की खोज में निकले। चलते-चलते वे एक जङ्गल में पहुंचे। वहाँ देखा कि एक लकड़हारा एक पेड़ पर बैठा लकड़ी काट रहा है। वह जिस डाल पर बैठा है, उसी को काट रहा है। डाली के कटने ही, वह पृथ्वी पर गिरेगा और अपना सिर या हाथ-पाँव तोड़ डालेगा। इसे देखकर ब्राह्मणों ने सोचा, 'यही सबसे बड़ा मूर्ख है। इसे अपने मरने तक की भी चिन्ता नहीं है। इसी जड़ मूर्ख से राजकुमारी का विवाह कराना चाहिए।'

वे फुसलाकर उसे राजकुमारी के पास ले गये। शास्त्रार्थ हुआ। उसमें उस मूर्ख द्वारा दिये गये संकेतों के ऐसे-ऐसे गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ निकाले गये कि राजकुमारी को हार स्वीकार करनी पड़ी। मूर्ख से विवाह करना पड़ा।

जब वे पहली बार मिले, तो सारा रहस्य खुला। राजकुमारी बड़ी दुःखी हुई। उसने अपने मूर्ख पति की बड़ी ताड़ना की।

अपमान की चोट खाकर मूर्ख बोला, 'मैं जाता हूं। अब मैं तब ही वापिस आऊंगा, जब तुम से अधिक विद्वान् हो जाऊँगा।'

वह चला गया और वर्षों तक उस मूर्ख का कोई पता न चला। बेचारी राजकुमारी अपनी ताड़ना पर पछताती और कलपती रही।

उधर वह मूर्ख अपनी मूढ़ता दूर करता और ज्ञान उपार्जित करता रहा। उसकी दीर्घ साधना चली···अभ्यास करते-करते वही व्यक्ति सचमुच एक दिन विद्वान् कवि हो गया।

यही मूर्ख कवि कालीदास थे, जिनकी कोटि का भावुक कवि दूसरा नहीं हुआ। अपनी संकल्प शक्ति से उन्होंने अपने अज्ञान, मूर्खता और अविवेक को दूर किया था। अज्ञानी से ज्ञानवान् बने थे, अन्धकार से प्रकाश की ओर चले थे। कल्पना कीजिए, जिस व्यक्ति के प्रारम्भिक पच्चीस वर्ष आलस्य और मूर्खता में बीते थे, वही व्यक्ति मनोयोग और सत्संकल्प से विद्वान् कवि बन गया। उसने अमर ग्रन्थों की रचना की और आजतक बड़े आदर से स्मरण किया जाता है।

गंवार देहाती बालक से प्रसिद्ध वैज्ञानिक

चार्ल्स डरबिन ने विज्ञान के क्षेत्र में अपने नये सिद्धान्तों द्वारा क्रान्ति मचा दी थी। पर अपने प्रारम्भिक जीवन में वह आलसी, गंवार और मूर्ख था। उसका मन पढ़ने में किञ्जित् भी नहीं लगता था। वह प्रायः कक्षा से भाग जाता और जङ्गल-जङ्गल घूमता फिरता था। पक्षियों के घोंसले, इकट्ठे करता और जानवरों की आदतों का सूक्ष्म

निरीक्षण करता रहता। उसका मन जीवित जनवरों में अधिक लगता था, वह शुष्क पुस्तकों में कम रुचि लेता था। उसके अध्यापक उसकी कक्षा से भागने की आदत से परेशान हो गये थे।

किन्तु उसका जीव-विज्ञान में शौक उत्तरोत्तर बढ़ता गया और अन्त में उसने जीवों के सम्बन्ध में अनेक मौलिक खोजें प्रस्तुत की। उसकी यह रुचि इस कोटि तक बढ़ी कि उसने अपना समग्र जीवन विज्ञान की सेवा में अर्पित कर दिया और अन्त में विश्व का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक बना।

वास्तव में कोई व्यक्ति समूचा बुरा नहीं होता। आदमी की बुराई के स्तर हैं। कभी-कभी ऊपरी परत पर दुष्टता, मूढता और शठता का मैल जम जाता है, जैसे नारियल के ऊपर सख्त लकड़ी का परत। पर जब यह परत अलग हटता है तो अन्दर से शीलगुणरूपी दूध जैसा निर्मल और स्निग्ध खोपरा निकलता हैं। इसी प्रकार अनेक बार दुष्ट कहलाने वाले व्यक्ति भी सुधर जाते हैं और समाज के लिये बड़े उपकारी सिद्ध होते हैं।

न्यूटन का जन्म २५ दिसम्बर १६४२ को वूल्सथार्प नामक एक छोटे-से गाँव में गरीब घर में हुआ था। पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उसकी दादी ने ही उसे गांव के स्कूल में पढ़ने भेज दिया था। वहाँ अध्ययन में उसका मन ही न लगता था। उसकी मशीन सम्बन्धी कार्यों में बड़ी रुचि थी। उसने मामूली साधनों से अपने औजार बनाये। धीरे-धीरे उसकी रुचि गणित, भौतिक-विज्ञान और खगोल-विद्या में बढ़ी। अब वह दूसरों से उधार ले-लेकर इन विषयों का अध्ययन करने लगा। वह रात्रि के समय सितारों का अध्ययन करता था। जब न्यूटन १४ वर्ष का हुआ तो उसे गरीबी के कारण स्कूल छोड़ना पड़ा अब तक उसकी रुचि पूर्णरूप से जाग्रत हो चुकी थी। इसलिये अनेक अड़चनों के बावजूद उसकी माँ ने उसे स्कूल वापिस भेज दिया। वहाँ पढ़कर वह

केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय गया। घोर परिश्रम के फलस्वरूप वह विद्वत्ता और यश के उच्चतम शिखर पर पहुंचकर पार्लियामेण्ट का सदस्य बना और उसे 'नाइट' की उपाधि दी गयी।

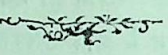

महत्वपूर्ण कार्य करने में मन पर जोर देना पड़ता है।

मन की पशु-प्रवृत्तियाँ

सुबह उठा, तो आलस्य ने घर दबाया। इच्छा हुई कि पूर्व निश्चत दैनिक प्रोग्राम के अनुसार आज टहलने न जाऊँ। घर की स्वच्छता, पुस्तकों को सुचारु रखना, स्नान वस्तुओं को ठीक रखने में इत्यादि साधारण दैनिक कृत्यों में ही प्रातःकालीन बहुमूल्य समय बिता दूँ। टहलने और घूमने जाने में तैयारी करनी पड़ती है स्वच्छ वस्त्र धारण करने पड़ते हैं। घन्टा भर चलने फिरने में पाँवों पर जोर पड़ता है। बाहर निकलने से पहले यह ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं कोई मिल जाय, तो मेरी सज्जन-जैसी वेशभूषा पाये। कहीं कोई लापरवाही न रह जाय। वस्त्र स्वच्छ रहें, जूतों पर पालिश रहे, बाल संवारे हुए रहें। चेहरे पर मधुर मुस्कराहट रहे। निष्कर्ष यह कि आदमी पूरी तरह अपने अच्छे मूड में रहे। इस सब लिफाफे को तैयार करने में मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखना पड़ता है। सिपाई की तरह कवायद के लिये तैयारी करनी होती है। बस, इसी में आलस्य घर दबाता है।

मैं जानता हूँ प्रातःकालीन स्नान, टहलना, पूजापाठ, स्वाध्याय आदि का कार्यक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हैं। एक उन्नतिशील और विकासोन्मुख व्यक्ति को ये नित्य कर्म जरूरी हैं। शारीरिक और मानसिक पवित्रता के लिये इन्हें करना ही चाहिये।

फिर भी इन्हें करने में मन अड़ियल घोड़े की तरह क्यों अटकता है ? जीवनोपयोगी मानते हुए भी सरपट उधर क्यों नहीं दौड़ता ?

इसी प्रकार के अन्य उपयोगी, महत्वपूर्ण और ऊँचे काम करने में क्यों नहीं लगता । उस पर विवेक का हन्टर भी पड़ता है। बार-बार उसे याद कराया जाता है, पर वह फालतू बातों में जितना रस लेता है, उतना महत्वपूर्ण कार्योंमें नहीं लगता । कहानी उपन्यास पढ़ने में घन्टों व्यतीत हो जाते हैं और पता ही नहीं चलता वे कब समाप्त हो गये । ताश चौपड़ और जुए में लोग घन्टों बरबाद कर देते हैं और मन पर तनिक भी बोझ नहीं मालूम पड़ता। गपशप, मित्रों के साथ निरर्थक बातचीत, चुगली, व्यर्थ की बहस, झगड़ेबाजी, अधिक सोना आदि ढेरों ऐसे बेमतलब के कार्य हैं, जिनमें मन बखूबी लगता है । पर गम्भीर विषयों, काम की बातों से दूर भागता है। आखिर हमारे मन की यह क्या मनोवृत्ति है ?

इसका कारण यह है कि मनुष्य सभ्य, समझदार और विकास की इतनी लम्बी मंजिलें पार करने के बाद भी अन्दर से अभी पुराना असभ्य बर्बर पशु ही है। वह बाहर से सभ्यता का ढोंग करता है, पर वास्तव में अभी पशुता की सीमाओं के पास पड़ा है।

समय-समय पर उसकी पशुप्रवृत्तियाँ जोर मारती हैं। वह विवेक शील मानव की उच्च गौरवशालिनी सीढ़ी से पशु-वृत्ति में गिरने लगता है। वह पशु जैसे दुष्कर्म करने लगता है। बेमतलब ईर्ष्याद्वेष और झगड़े की बातें करता है। पशुओं जैसे आलस्य में पड़े रहने में आनन्द का अनुभव करता है। कचहरियों के आगे आप जिन अपराधियों, वकीलों, उनके एजेन्टों, गवाहों तथा अनेक आदमियों की भीड़भाड़ पाते हैं, वे वही व्यक्ति हैं, जो पशु की दूषित वृत्तियों के कारण हमारी दया के पात्र हैं। जेलखानों, शराबखानों पान दूकानों तथा सिनेमाघरों के समीप ऐसे सैकड़ों व्यक्ति पशुवृत्तियों से परेशान घूमते फिरते हैं। मजदूरों की गन्दी

बस्तियों, गंवार गाँव वालों, ताँगे वालों मोटर ड्राइवरों, फैशनेबिल रोमांटिक युवकों, अवारागर्द लोगों में दुष्प्रवृत्तियाँ खूब जोर मारती हैं। ऐसी खबरें नित्यप्रति समाचार पत्रों मे छपती रहती हैं, जिसमें मनुष्य की पशुप्रवृत्ति खूब देखी जाती है। इन समाचारों को पढ़कर हमें लज्जा आती है।

पशुप्रवृत्ति आज किन-किन रूपों में प्रकट हो रही है ?

समाचार पत्रों को उठाकर देखिये मनुष्य को लजाने वाली सैकड़ों खबरें छप रही हैं। शालीनता और सज्जनता को छोड़ हम मनुष्य कैसे कहला सकते हैं ?

कुछ समाचार देखिये

हैदराबाद का समाचार है। यहाँ गत दो वर्षों में महिलाओं से छेड़छाड़ सम्बन्धी मामलों की छानबीन का विश्लेषण किया गया, तो मालूम हुआ है कि उनमें सामान्यतः छात्र तथा अन्य शिक्षित व्यक्ति ही अधिक होते हैं। अब कठोर नियन्त्रण व निगरानी के कारण छेड़छाड़ के मामलों में कुछ कमी दिखाई दे रही है। राज्य सरकार ने इन मामलों को कम करने का विचित्र उपाय अपनाया है। वह छेड़छाड़ करने वालों के नाम गजट में प्रकाशित कर देती है। इससे पशु जैसे इन अपराधियों की कमी होती जा रही है।

दिल्ली में ऐसी महिलाओं वृद्धि होती जा रही है, जो टाइट कपड़े पहिनती हैं। यह वस्त्र इतने फिट होते हैं कि समूचा शरीर नजर आता है। बारीक कपड़े होने के कारण वे अर्द्धनग्न-सी हो जाती है। चलने फिरने में भी बड़ी तकलीफ होती है। भागते हुए या झुकते हुए प्रायः नीचे गिरने की नौबत आजाती है, पर वे टाइट कपड़े पहिनना नहीं छोड़ रही हैं।

कलकत्ता शहर एवं आस-पास के प्रदेशों में अश्लील पोस्टरों के

खिलाफ एक अन्दोलन चल रहा है। इन अश्लील पोस्टरों से सभ्य समाज के बालक-बालिकाओं में कुरुचि और वासना उदीप्त होती है। तरुण, तरुणियों पर इसका कुप्रभाव पडता है क्योंकि इनसे पशुवृत्तियाँ भड़क उठती हैं। आज शहरों में इस प्रकार के फिल्म भी बड़ी संख्या में दिखाये जारहे हैं, जहाँ इस प्रकार की पशुवृत्तियों का नग्न प्रदर्शन है। गन्दे उत्तेजक गीत तो रेडियो से चीख-चीखकर सारे दिन समाज में पशुता की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

नावदा का समाचार है। दो युवकों को अश्लील गाने, गाने तथा स्थानीय डाकबंगले के पास आवारा घूमने के अपराध में नवादा की पुलिस ने गिरफ्तार करके जेल भेज दिया है तथा उन दोनों के विरुद्ध भारतीय दण्ड विधान की धारा २९९ के अन्तर्गत मुकदमा चलाया है।

चण्डीगढ़ पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री रामकिशन ने कुछ साप्ताहिक पत्रों में समाज विरोधी अश्लील सामग्री के प्रकाशन तथा कुछ आवारागर्द लोगों पर अश्लील पोस्टरों के मुद्रण के विरुद्ध कार्यवाही करने का विचार किया था।

इटावा—यहाँ ताश के खेल में एक युवक ने अपने साथी को कत्ल कर दिया। बताया जाता है कि बहादुरपुर थार में दो युवक रामसिंह व शिवसहाय अपने साथियों के साथ ताश खेल रहे थे। खेल की हारजीत पर रामसिंह व शिवसहायसिंह में आपस में कहासुनी हो गई और रामसिंह कत्ल की धमकी देकर चला गया। इस घटना के दो दिन बाद रामसिंह हाथ में तलवार लिये हुए थाने में दाखिल हुआ और आत्म-समर्पण करते हुए उसने शिवसहाय सिंह को कत्ल करने की घटना कही। पुलिस तुरन्त ही घटना स्थल पर पहुँची जहां शिवसिंह का सिर धड़ से अलग पड़ा हुआ था।

मेरठ पुलिस ने यहाँ एक सड़क छाप मजनू को, जो कन्या महाविद्यालय के निकट लड़कियों को छेड़ रहा था, पकड़कर उसका सिर

मूंड दिया। उसका मुंह काला कर उसकी पीठ पर पट्टी लटकादी जिस पर लिखा था—

'मैं लड़कियों को छेड़ रहा था।'

इस अवारा सड़क छाप मजनू को इस वेश में कचहरीं के अहाते व मार्ग पर घुमाया गया। वह जिधर से गुजरता था, सैकड़ों लोग उसे देखते थे। युवक बी. एस. सी. का छात्र बताया गया है।

× × × ×

ये सब समाचार मनुष्य की पशुप्रवृत्तियों को प्रकट करते हैं। ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ किसी भी समाज को लजाने वाली हैं। ये मनुष्य की पशु-प्रवृत्ति को स्पष्ट करती हैं। इन्हें त्याग देना बेहद जरूरी है।

बड़े-बड़े अपराधों का प्रारम्भ मन को अनियन्त्रित ढीला छोड़ देने गिरावट की ओर चले जाने देने, पशुओं जैसे गन्दे काम करने देने से होता है। बाल्यावस्था में कुसङ्गत में पड़ जाने से युवक पशुप्रवृत्तियों की ओर चलने लगते हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, मनुष्य अन्य अपराधियों के रङ्गढङ्ग देखकर दुष्कर्मों में पक्का होता जाता है। अनियन्त्रित मन और असंयमी जीवन अपराध के कारण हैं।

नई पीढ़ी को संयम और अनुशासन की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे किशोरों को उपयोगी जनकल्याण सम्बन्धी प्रवृत्तियों में ही प्रोत्साहित करें। शुभ संस्कारों को स्वभाव में दृढ़ करने के प्रयत्न चलते रहने चाहिए।

मनुष्य में सत्संस्कार भी दबे रहते हैं !

निर्दयी डाकू से दयावान् महात्मा ! —महर्षि वाल्मीकि
घोर कामुक से संयमी और वैरागी !! —गोस्वामी तुलसीदास
उद्दण्ड से शान्त और सन्तुलित !!! —महर्षि सुकरात

ये सब मनुष्य के जीवन की दो आखरी सीमाएं हैं। आश्चर्य होता है कि एक निर्दयी डाकू बदल कर दयावान महात्मा कैसे हो सकता है ? एक पापी कामुक व्यक्ति संयमी और वैरागी सन्त कैसे हो सकता है एक शरारती और उद्दण्ड व्यक्ति परिवर्तित होकर शान्त गम्भीर और सन्तुलित कैसे बन सकता है ?

पर सच मानिये, यह सब अद्भुत परिवर्तन हुए हैं और भविष्य में हो सकते हैं। मनुष्य बड़ा ही लचीला प्राणी है। जिधर को मुड़ना चाहे संकल्पबल से मुड़ सकता है। जो आज दुष्ट, हिंसक, हत्यारा, निकृष्ट है, वही कल बदलकर सज्जन, श्रेष्ठ और विद्वान बन सकता है। वास्तव में कोई मनुष्य बुरा नहीं है। बस उसमें सत्संस्कार दबे रहते हैं।

अंकुरित करने का हेतु चाहिए

मनुष्य ईश्वर का प्रिय पुत्र है। ऊपर से उसमें कुछ काल के लिए पाशविक दुष्प्रवृत्तियाँ तेज हो सकती हैं, किन्तु मनुष्य में रेगिस्तान में नखलिस्तान की हरी दूब और ठन्डी छाया की तरह शुभ सात्विक दैवी सत्संस्कार भी दबे रहते हैं। कदाचित् उनको अंकुरित करने का कोई हेतु आ जाय, तो मनुष्य की गिरी हुई परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन हो जाता है।

ऐसे असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनमें दुष्ट और दुर्जन यकायक बदलकर बिल्कुल नये अच्छे पुरुष बन गये। उनके नये परिवर्तित रूप को देखकर प्रायः विश्वास भी नहीं होता कि यह अद्भुत रद्दोबदल उनमें यकायक कैसे, कहां से, किस प्रकार जाग्रत हो गई ?

मनुष्य की अच्छाई और बुराई के स्तर हैं। कभी-कभी ऊपरी परत पर तो दुष्टता और खराबी जमी रहती है, जैसे नारियल के ऊपर सख्त लकड़ी का परत ! पर जब यह परत हटता है, तो अन्दर से दूध जैसा निर्मल स्निग्ध और स्वादिष्ट खोपरा निकलता है। इसी प्रकार अनेक बार दुष्टता में सज्जनता और मूर्खता में विद्वत्ता छिपी रहती है।

चार्ल्स डारविन ने विज्ञान के क्षेत्र में अपने नये सिद्धान्तों द्वारा क्रान्ति मचा दी थी, पर उनके अध्यापक प्रायः कहा करते थे कि विद्यार्थी जीवन में उन जैसा आलसी, मूढ़ और देर में आने वाला दूसरा कोई विद्यार्थी नहीं था। उनके अध्यापक उनके कक्षा से भागने की आदत से तङ्ग आ गये थे।

सर आइजक न्यूटन ने गुरुतत्वाकर्षण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त खोज निकाला था। उसमें तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है, पर न्यूटन में पहले इसी तत्व का अभाव था। न्यूटन का जन्म २५ दिसम्बर १६४२ को वूल्सथार्प नामक एक गाँव में हुआ था। बचपन में ही उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। उसकी दादी ने उसे गाँव के स्कूल में पढ़ने भेज दिया था। वहाँ पढ़ाई में उसका मन ही न लगता था। उसे मशीन के कामों में रुचि थी। उन्होंने अपने आप आरियाँ बनाई। और अनेक विचित्र चीजें बनाई इन चीजो को बनाते-बनाते उसकी रुचि गणित, भौतिक विज्ञान और खगोल विद्या में बढ़ी। अब वह दूसरों से उधार ले लेकर इन विषयों की किताबें पढ़ता था। रात्रि के समय वह सितारों को देखता था। न्यूटन चौदह साल का हुआ, तो उसे

गरीबी के कारण स्कूल छोड़ना पड़ा था। पर अब तक उसकी रुचि जाग्रत हो चुकी थी। अब वह पढ़ना चाहता था। इसलिए एक या दो साल बाद उसकी माँ ने उसे स्कूल वापिस भेज दिया। वहां से वह केम्ब्रिज विश्वविद्यालय गया। फिर तो उसकी रुचि श्रम, विद्वता ने उसे यश और सम्मान के उच्चत्तम शिखर पर पहुँचा दिया। कल का गरीब, गंवार देहाती बालक आज का प्रसिद्ध सम्मानित वैज्ञानिक बना। उसे पार्लियामेन्ट का सदस्य बनाया गया और 'नाइट' की उपाधि दी गई।

मनुष्य में अच्छे संस्कार दबे रहते हैं

आज का उद्दण्ड युवक कल का सफल नेता बन सकता है। आज का खिलाड़ी सेना का कुशल सेनाध्यक्ष बनकर देश की रक्षा में हाथ बँटा सकता है। जिस बालक को आप आवारा समझते हैं, संभव है वह कल एक अच्छा पुलिस का अफसर बन जाय। जिसे आज कानून चोरी के लिए अपराधी मानता है, कल वही एक निपुण कारीगर या सङ्गीतज्ञ बन सकता है।

मनुष्य में कभी-कभी भले संस्कार अन्दर की परत में दबे रहते हैं। उसका शुरू का जीवन लापरवाही में व्यतीत हो जाता है पर अकसर यकायक उसके शुभ संस्कार जाग्रत होकर जीवन में नया मोड़ उपस्थित कर देते हैं।

संस्कारों की परत पर परत चढ़ी रहती है। उन्हें एक के बाद एक हटाते जाइये, तो अन्दर से उत्तम वातु (शील, गुण) निकल सकते हैं।

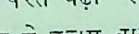

आज के युग में साधु क्या करें ?

श्रीवस्ती अकाल के कुटिल मुंह में कराह रही थी। न जाने विधि का क्या प्रकोप हुआ कि वर्षा न हुई। कृषकों के खेत सूख गये ! पशुओं के लिए चारा उत्पन्न न हुआ। अनावृष्टि के कारण इतना भी जल न था कि पीने के लिए पर्याप्त पानी मिल जाये ! लोग तो किसी प्रकार अपने जीवन का रक्षण कर रहे थे, किन्तु पशुओं के चारे की कुछ भी व्यवस्था न थी।

गरीब किसानों के लिए राज्य का भूमिकर चुकाना एक विषम समस्या बन गया था। जहां प्राण रक्षण में कठिनाई हो, वहाँ राज्यकर की कौन सोचे ? भूखे व्यक्ति भूख से तिलमिला रहे थे। जो असक्त और दुर्बल थे, वे भूख से मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। कुछ की करुण कराहें दृश्य को विदीर्ण कर रही थीं।

सत्पुरुष ऐसे सङ्कट को देखकर बिना विचलित हुए कैसे रह सकते हैं ?

"क्या आप लोग ? "भगवान बुध ने श्रीवस्ती के नागरिकों को सम्बोधित करते हुए कहा – "क्या आप में ऐसा कोई उदार हृदय करुणा से ओतप्रोत व्यक्ति नहीं है, जो अकाल में मरते हुए इन हजारों लोगों के भोजन की व्यवस्था कर सके ?"

"कौन-कौन व्यक्ति सहायता कर सकते हैं ?" सब ने प्रश्न किया।

एक एक कर उनके नाम गिनाये जाने लगे।

राजा के सेनापति को बुलाया गया, "आप अकाल पीड़ितों के लिए भोजन की व्यवस्था करें सेनापति जी !"

सेनापति कुछ देर तक सोच विचार में डूबा खड़ा रहा।

"प्रभु ! मेरा काम तो शत्रुओं से देश की रक्षा करना है। यदि कोई बाहरी शत्रु हम पर आक्रमण करे, तो रक्षा कर सकता हूँ, पर

अनावृष्टि के कारण पीड़ित देशवासियों को भोजन देने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। युद्ध विद्या में ही मैं निपुण हूँ। भोजन जुटाना मेरी सामर्थ्य से परे की बात है।

सेनापति निरुत्तर हो गये।

फिर सब ने एक धनपति सेठ का नाम सुझाते हुए कहा, 'भगवन्, इस नगर में रत्नाकर सेठ सबसे अधिक धन वाला व्यक्ति है। वह अपने विपुल धन को अनावृष्टि के सङ्कट काल में सहायता के लिए खर्च कर सकता है।'

सेठ रत्नाकर को बुलाया गया।

"सेठ जी, अकाल की इस स्थिति में जनता की रक्षा कीजिए। आप सैकड़ों एकड़ जमीन के मालिक हैं। आप के पास विपुल धनराशि जमा पड़ी है। अकाल पीड़ितों के लिए इस समय आपका संचित धन काम आना चाहिए आप चाहें, तो अपनी जायदाद और एकत्रित रुपये से हजारों की प्राणरक्षा द्वारा पुण्यकीर्ति का अर्जन कर सकते हैं। इस लोकसेवा के अवसर को मत त्यागिये।"

सेठ रत्नाकर मन से कंजूस और अनुदार वृत्ति के थे। मोह वृत्ति ने घर दबाया।

उन्होंने ठण्डी साँस लेकर उत्तर दिया, "देखिए, इस वर्ष तो मेरी भी कुछ आय नहीं हुई है। जिनसे पैसा लेना था, उन्होंने भी उस राशि का ब्याज और मूल कुछ भी अदा नहीं किया है। इन दिनों मेरे भी हाथ तङ्ग हैं। इसलिए मैं भी अपने आप को विवश पा रहा हुँ। मजबूर हुँ अकाल पीड़ितों की सहायता न कर पाऊंगा।"

गौतम बुद्ध चुप हो गये ! रुपये का काम कोरी जबानी जमा खर्च से तो चल नहीं सकता था !

वे अब अकाल पीड़ितों की सहायता का नया मार्ग सोचने लगे ! उन्होंने अपनी समस्या को अपने और शिष्यों के समक्ष रखा !

जहां साधन सम्पन्न निरुत्तर हो जाय. वहाँ अन्य कौन बोलने का साहस करे !

परमेश्वर की सृष्टि में कभी कभी अनहोनी घटनायें घटित होती हैं। साधारण दीखने वालों को अद्भुत आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं ! जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन में सभी व्यवहार करते हैं, उन्हें ईश्वरीय निर्देश मिलते रहते हैं। जब कठिनाइयों और विपत्तियों के समय बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, तब अन्दर की प्रभु-प्रदत्त आत्म प्रेरणा से मनुष्य सचेत और सक्रिय होकर विपत्तियों से सुलझाने का मार्ग प्राप्त करता है। जीवन की विकट परिस्थितियों में ऐसे अनुभव होते हैं जिनसे मनुष्य की श्रद्धा, आत्मशक्ति और निश्चय बल बढ़ता जाता है। उसका आत्मविकास होता जाता है। और ईश्वरीय सहायता मिलती जाती है।

जब बुद्ध गम्भीरता पूर्वक सोच रहे थे तो एक भिखारी की कन्या उठी। उसने अभिवादन किया।

"सुप्रिया, तुम्हें कुछ सुझाव देना है क्या ?' बुद्ध ने पूछा,

"प्रभु, छोटे मुँह बड़ी बात कहने जा रही हूं। क्षमा करें तो निवेदन करूँ ?"

"हाँ, सुप्रिया, कहो ? क्या सुझाव है तुम्हारा ?" बुद्ध ने आग्रह किया।

"भगवन् ! समस्त अकाल पीड़ितों को भोजन देने का उत्तरदायित्व मैं लेती हूँ।"

सारे अनुयायी आश्चर्य में पड़ गये ! "भिखारी लड़की क्या कह रही है ? कैसे करेगी भूखों की सहायता यह ?" सबके मन शङ्काओं से भरे थे।

अनेक शंकाएँ एक प्रश्न बनकर उभर उठीं—

"सुप्रिया ! इस गुरुत्तर कर्त्तव्य का निर्वाह कैसे करोगी भला ! तुम्हारे पास कौन से साधन हैं ?"

सुप्रिया समझदार नारी थी । बोली—

"प्रभु की प्रेरणा से मैं घर घर से माँग कर अब तक अपना गुजारा करती थी । आप लोगों के यहाँ से मेरे पेट के लिए फालतू अन्न निकल आता था । आपको इसका पता भी न चलता था । हर सम्पन्न घर में दो चार भूखों को प्रति दिन खिलाने के लिए पर्याप्त अन्न रहता है । अपनी कृपणता और अनुदारवृत्ति के कारण ही वह भूखों को दान नहीं देना चाहता । वास्तव में दान देने वाला ही सब कुछ पाता है । कृपण तो अपना अन्न भी सड़ाकर नष्ट कर देता है । पूंजी वाले अनुचित रूप से अन्न संग्रह में मानवता को भूले हुए हैं । कुछ लालची ठूंस २ कर पेट को भरते हैं, फिर भी सन्तोष नहीं होता, वे ही लोग यदि कम खाने और अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से कभी न कभी उपवास करने लगें, तो सैकड़ों भूखों को अन्न मिल सकता है । मैं लोगों को मिताहार (कम खाने और अधिक जीने) की महिमा बतलाऊँगी और अकाल पीड़ितों के लिए भोजन एकत्रित करूंगी । साधु का यही तो धर्म है । आज की परिस्थितियों में साधु को पीड़ितों की सेवा करनी चाहिए । यही लोकधर्म है । मेरी करुणा ही सबसे बड़ी शक्ति है ।"

"सुप्रिया तू लोकसेवा के कार्य में सफल होगी ! "बुद्ध ने शान्ति से उसे वरदान दिया ।

धरती पर देवता बनाने वाली दैवी सम्पदायें !

जीवन में महक लाने वाले दिव्य गुण विकसित करें

दैवी सम्पदायें ही मनुष्य की दिव्य शक्तियाँ हैं। ये हमारी आत्मा के वे गुण हैं, जो स्थायी शक्ति और सुख प्रदान करने वाले है, दुःख से निवृत्ति और चिरन्तन सुख देने वाले हैं, 'मानवता' का अर्थ है अपने समान ही दूसरों के सुख दुःख और अभाव अभियोगों की अनुभूति, सब की उन्नति में अपनी उन्नति, तथा सबके सुख में अपना सुख मानना, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को समाज के सुख पर बलिदान करना, स्वयं तरना और दूसरों को तारना, सबसे प्रेम पूर्ण सत्य व्यवहार करना और निर्दयता के विरुद्ध लड़ना। जब मानव हृदय में सात्विक बुद्धि का सर्वांगीण विकास होता है, तब यथार्थ मानवःधर्म का उन्मेष होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के १६वें अध्याय में इन दैवी सम्पदाओं (शक्तियों) पर प्रचुर प्रकाश डाला है तथा दैवी सम्पदा वाले ईश्वरीय लक्षणो का स्पष्ट विवेचन किया है। यथा—

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यम् क्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्तं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।२।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहा नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।३।

उपर्युक्त उद्धरण में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने दैवी शक्तियों का उल्लेख कर दिया है, किन्तु उनमें जो विपुल अर्थ-विस्तार और व्यापकता है, उस पर विचार कर लेना चाहिए। जो व्यक्ति निरन्तर इन

दिव्य गुणों का अभ्यास करता है, उसमें अद्भुत शक्ति-सामर्थ्य का विकास होता है। इन का फल मुक्ति और भगवत् प्राप्ति है।

यह दिव्य शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. निर्भयता

भय मानव का घोर शत्रु है। निर्भयता वह मनः स्थिति है, जिसमें मनुष्य की प्रतिभा का सही विकास होता है। मनुष्य नाना प्रकार की आवश्यकताए बढ़ाता है, मोह में पड़कर स्थान-स्थान पर असत्य भाषण मिथ्याचार, कपट, धोखा आदि से मन ही मन में सत्यता प्रकट होने से डरा करता है। एक झूठ को निभाने के लिए दस नए झूठ बोलने पड़ते हैं। ऐसी व्यवस्था में वह निर्भय कैसे रह सकता है ?

आज का सभ्य व्यक्ति नाना भयों, मिथ्या कल्पनाओं, व्यर्थ शंकाओं, वहम, चिन्ताओं में लिप्त रहता है। उसे अपनी सामाजिक स्थिति नष्ट होने का भय, धनप्रतिष्ठा जाने का भय, सन्तान न होने का या खराब निकल जाने का भय, अपने स्वास्थ्य खो जाने का भय, मृत्यु का भय, विवाह, शिक्षा, भोजन, बच्चों की चिन्ता, बनावटी संबध रखने की चिन्ता, झूठी इज्जत, विरोध, समाज की आलोचना, घर के झगड़ों या नौकरी छूटने का भय लगा रहता है। मनुष्य ने अपने चारों ओर भयों का माया जाल फैलाकर अपने आपको जञ्जीरों में बाँध रखा है। इन कल्पित भयों के फल स्वरूप मानव के मन में भयानक चिन्ता और अन्तर्द्वन्द्व चल रहे हैं।

भय का कारण है, अज्ञान, मिथ्या कल्पनाएं तथा कठोर स्थितियों से सामना न कर भागने की गुप्त इच्छा। अपने वास्तविक रूप में मनुष्य को सद्ज्ञान से परिपूर्ण हो पूर्ण निर्भय होना चाहिए। मनुष्य तो साक्षात् आत्मा है। ईश्वर का दिव्य अंश है। प्रभु के अंश में भय कैसे रह सकता है ? भय तो स्वयं हमारे द्वारा उत्पन्न एक त्याग करने योग्य बुरी आदत मात्र है। यदि हम अपने दिव्य अंश का विकास

देखना चाहते हैं, तो हमें साहस पूर्ण मनुष्योचित जीवन व्यतीत करना चाहिए।

ईश्वर के पुञ्ज असीम शक्तियों के केन्द्र मनुष्य ! उठ, कायरता और गुप्त भय की गुदड़ी उखाड़ फेंक ! डरपोकपन की केंचुली से मुक्त होकर साहस और पौरुष के प्रभात में जाग ! निर्भयता के सूर्य को देख ! यही तेरा परम निर्भय स्वरूप है। तू सावधान होकर आत्म तत्व का दर्शनकर, जिसका तू प्रतिबिम्ब है। भय का अस्तित्व अज्ञान में है। तेरे अन्तस्थल में आत्म ज्योति जगमग कर रही है, फिर तेरे अन्तः प्रदेश में भ्रम, शङ्का, सन्देह, चिन्ता और अनिष्ट प्रसङ्ग कैसे उथल पुथल मचा सकते हैं ? तुझे हीनता का विचार नहीं करना चाहिए। रोग, प्रतिकूलता और व्यग्रता से विचलित नहीं होना चाहिए। तू अपने अज्ञान को त्यागकर निर्भयता को अपना ले। यह निर्भयता ही तेरा मुख्य गुण है। इसी के बल पर तू भूतल का स्वामी बना है और चिर-काल तक राज्य करता रहेगा। स्मरण रख, स्वयं मिथ्या भयों में लगे रहना या अन्य किसी को व्यर्थ ही भयभीत रखना दोनों ही मानव धर्म के विपरीत हैं।

अथर्व वेद में प्राणों की अभय प्राप्ति के लिए जो वैदिक सूक्त दिये गए हैं, वे मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करते हैं। इस दिव्य गुण की प्राप्ति के लिए निम्न सूक्तों (अथर्ववेद २।१५) में रमण करना चाहिए—

"जिस प्रकार द्यौ और पृथ्वी न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी मत डरो, मत क्षीण हो।

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो।

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उस प्रकार तुम भी मत डरो, न क्षीण हो।

जिस प्रकार दिन और रात्रि न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार धेनु और वृषभ न डरते है, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार मित्र और वरुण न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार ब्रह्म और क्षत्र न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्रियाँ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार प्राण और न अपान न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार मृत्यु और अनृत न डरते हैं, न क्षीण होते हैं हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार सत्य और अमृत न डरते हैं और न क्षीण होते है, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

जिस प्रकार भूत और भविष्य न डरते हैं, और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।"

जीवन में तुम्हें चहुं ओर अन्धकार प्रतिकूलता दुःख क्लेश दिखाई देते हों, तो आत्मा के प्रकाश में आने का, आत्मा को जानने और अनुभव करने का प्रयत्न कीजिए । "तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः" (अथर्ववेद १०-८-४४) उस आत्मा को जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता । स्मरण रखिए, आप महान शक्तिशाली सर्वगुण सम्पन्न विशुद्ध आत्मा हैं । आप निर्विकार आत्मा हैं । आपको कोई हरा नहीं सकता । आपकी शक्तियाँ इन्द्र के बज्र से भी अधिक प्रभावशालिनी हैं । आप साहस और बल के अवतार हैं । विश्व के समस्त प्राणियों के सिर-

मौर हैं। आपको अक्षय सिद्धियां प्राप्त हैं। इन्हीं का विकास निरन्तर होना चाहिए।

२. अन्तःकरण की स्वच्छता

जब मन, वचन, तथा कर्म में एकता नहीं रहती, तब आन्तरिक अशुद्धि प्रारम्भ होती है और जीवन में कपट पाप कृत्रिमता आती है। मनुष्य कहता कुछ, और करता कुछ और है। झूठ कपट और मिथ्याचार से मन मलीन हो जाता है और पवित्रता की शक्तियाँ क्षीण हो जाती है। सत्यता एक शक्ति है। कृत्रिमता एक दुर्गुण है। आज के जीवन में बाह्य टटीपाप तो रह गई है, किन्तु आन्तरिकशुद्धता की ओर किसी की दृष्टि नहीं है आधुनिक बनावटी जीवन को लक्ष्य कर किसी कवि ने सत्य ही कहा है—

मन में राखें और कछु, वाणी में कुछ और।
कर्म करें कछु और ही, झूठे तीनों ठौर॥

हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मन उत्तम संकल्पों वाला हो। (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) मन में ऐकत्रित स्वार्थ, वासनाओं तथा अहंबुद्धि के परिमार्जन से अन्तःकरण की शुद्धि हो सकती है। अपनी आत्मा को ब्रह्म में अर्पण करना, दूसरे के दोष न देखना, कुसङ्ग से मुक्ति, तमोगुणी वातावरण से दूर रहना, पर स्त्री सङ्गी व्यक्तियों से दूर रहना, नास्तिक दम्भी अभिमानी पर—निन्दा परायण लोभी आदमियों की सङ्गति से पृथक रह कर सत्य के मार्ग पर चलने से अन्तःकरण शुद्ध होता है।

वैदिक ऋषियों ने वैदिक सूक्तियों में बड़ी कल्याणकारी सूक्तियाँ दी हैं। कुछ इस प्रकार है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम (यजुर्वेद २५।२१)

हम कानों से सदा भद्र, मंगलकारी वचन ही सुनें।

× × × ×

भद्रं भद्रं ऋतुमस्मासु धेहि (ऋग्वेद १।१२३।१३)

हे प्रभो ! हम लोगों में सुख और कल्याणमय उत्तम सङ्कल्प, ज्ञान और कर्म को धारण कराओ ।

× × × ×

अहमनृतात्सत्यमुपैमि यजुर्वेद १।५)

मैं झूठ से बचकर सत्य को धारण करता हूँ ।

अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखिए । स्वच्छ अन्तःकरण में महर्षि पतञ्जलि की बताई हुई चार वृत्तियाँ रहती हैं मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा । ऐसा दिव्य व्यक्ति इन चारों से कार्य लेता है । वह जिस जिस को सुखी देखता है, उस के प्रति मित्रता का भाव रखता है । किसी को दुःखी देखता है, तो उसके आन्तरिक घावों पर मृदु सहानुभूति का मरहम लगाता है । यदि किसी पुण्यवान से मिलता है तो प्रसन्न होता है और यदि किसी दुष्ट पापी को देखता है, तो वह उसकी उपेक्षा करता है । इस प्रकार दुःख से त्रस्त मानव के प्रति करुणा के व्यवहार से उसकी स्वार्थपरता दूर होती है । पुण्यवान को देखकर प्रसन्न होने से गुणों की वृद्धि होती है । दुष्टों से दूर रहने से अन्तःकरण स्वस्थ बनता है ।

दैवी स्वभाव वाला व्यक्ति सबको समभाव से देखता है तथा प्रेम करता है । वह अपने दैनिक सामाजिक जीवन में भी वास्तविकता को स्थान देता है । उसके कथन और कार्य में समभाव रहता है । वह जैसा सोचता है, वैसा ही करता भी है । उसके मन, वचन, तथा कर्म तीनों का एक रूप होता है । वह किसी के प्रति ईर्षा या द्वेष नहीं रखता । अतः अन्तःकरण की स्वच्छता के कारण अपने मन में निरन्तर शान्ति और मानसिक सन्तुलन का सुख लूटता है । जिस व्यक्ति के पास छिपाने के लिए कुछ शेष न रह जाय, उसी का जीवन धन्य है ।

३. ज्ञानयोग व्यवस्थिति

परमात्मा के स्वरूप ज्ञान रूप योग में निरन्तर स्थित रहना एक दैवी शक्ति से सम्पर्क स्थापित करना है। सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के स्वरूप में एकी भाव से ध्यान में निरन्तर गाढ़ स्थिति का नाम ज्ञान-योग व्यवस्थिति है।

सम्पूर्ण इन्द्रियों का कोलाहल शान्त होने पर वैराग्य युक्त पवित्र चित्त से अपने इष्टदेव भगवान् का आह्वान करने पर ध्यानावस्था में भगवान् के दर्शन होते हैं। ध्यानावस्था योग की उच्चतम स्थिति है, जिसमे इष्टदेव के साकार रूप का ध्यान करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती प्रत्युत एक अदृष्ट शक्ति ब्रह्मांध्र द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश करने लगती है।

जगत में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सब की जड़ है। सत्य से बढ़कर दूसरी कोई उत्तम गति नहीं है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् इष्टे परावरे ।।

मुण्डक० २।२।८

कार्य कारण रूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अविद्या रूप ग्रन्थि टूट जाती हैं, समस्त संशय-सन्देह कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

इस स्थिति के लिए सतत साधना तथा अभ्यास की आवश्यकता है। नेत्र मूंद शान्त हो सुखासन से बैठ जाइये और मन में ईश्वर की जिस मूर्ति को पसन्द करते हों, मानचित्र बनाइये। तदनन्तर उपास्य-देव के दिव्य गुणों, शक्तियों, सामर्थ्यों का ध्यान कीजिए। इससे उन्हीं दिव्य गुणों का आप में प्रादुर्भाव होगा।

जो व्यक्ति परमात्मा के स्वरूप को तत्व से जानने के लिए उनके

ध्यान रूपी योग में निरन्तर दृढ़तापूर्वक स्थित रहता है, उसे किसी के घमण्ड क्रोध दिखाऊपन, कठोरता, प्रवंचना का भय नहीं रहता। उसे ईश्वर की सब शांतिदायिनी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान श्रद्धा पूर्वक उनकी भक्ति करने से होता है। इसके लिए प्रारम्भ मूर्ति-उपासना से किया जा सकता है। अर्थात् अव्यक्त, इन्द्रियातीत बताये गये निराकार ब्रह्म की साकार रूप में अवतारण और धारणा करनी चाहिए। इस प्रकार ईश्वर की शक्ति, सौन्दर्य, पवित्रता और महानता देखते देखते ये ही दिव्य शक्तियाँ साधक में भी प्रकट हो जाती हैं। परमात्मा स्वरूप आत्मा सभी में है। अतः मूर्ति उपासना से गुण बढ़ते है।

सत्सङ्ग, सद्ग्रन्थावलोकन, एकान्तवास में चिन्तन, दीर्घकालीन अभ्यास, सदा सर्वदा साधुव्यवहार से सद्गुण विकसित होते हैं। एक-निष्ठ होकर निरन्तर भगवन्नाम जप, कीर्त्तन, ध्यान करने से मन की चञ्चलता नष्ट हो जाती है और मन की स्वाभाविक गति आनन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जाती है।

४. सात्विक दान की अमित शक्ति

सात्विक गुणों की अभिवृद्धि के इच्छुक को शक्ति सामर्थ्य के अनुरूप दान देते और अपने से बिछड़े गिरे हुए व्यक्तियों की सहायता करते रहना चाहिए। कहा है—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

राजन्! ये दो प्रकार के पुरुष स्वर्ग के भी ऊपर स्थान पाते हैं— शक्तिशाली होने पर भी क्षमा करने वाला और निर्धन होने पर भी दान करने वाला।

ऋग्वेद में कहा गया है "दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते" अर्थात् दानी अमर पद प्राप्त करते हैं। यदि हम ध्यान से देखे, तो समस्त विश्व

हमें दान के सतोगुणी नियम पर चलता दिखाई देता है। ईश्वर की सृष्टि कुछ ऐसी है कि दान देने से दान दी गई वस्तु के बढ़ने का नियम है। परमेश्वर ने कुछ ऐसा क्रम रखा है कि "पहले दान दो, तब मिलेगा।" जब कोई तत्व अपने दान की क्रिया को समाप्त कर देता है, तो वह नष्ट हो जाता है। विकृत एवं कुरूप ही जीवन युद्ध में धराशायी हो जाता है।

दान का अभिप्राय क्या है ? दूसरे को देने का तात्पर्य है अपनी सङ्कीर्णता से छुटकारा और आत्मीयता व उदारता का अभ्यास। दान से आत्म-संयम की आदत पड़ती है और इन्द्रिय निग्रह में भी सहायता मिलती है। हम कम वस्तुओं, द्रव्य, अनाज आदि से काम निकालना सीखते हैं।

दान देने से दी हुई वस्तु बढ़ती है। विद्या दान दीजिए आप स्वयं विद्वान बन जायेंगे। रुपया पैसा अनाज इत्यादि देने से दाता के पास अधिकाधिक आते हैं। दयालुता, मैत्री भाव, समवेदना, संयम, धैर्य, शान्ति, विश्व व्यापी प्रेम—ये सारे भाव दूसरों को जितने दिये जाते हैं, उतने ही और भी बढ़ जाते हैं। दान देने के बाद मन में अमित शांति की प्रतीति होती है। उस वाचक के मुख को देखकर सन्तोष होता है जिसे आपने भोजन करा दिया है, या ठिठुरते हुए भिखारी को वस्त्र दे दिया है। दान का प्रत्यक्ष लाभ सन्तोष है जो देने वाला अपने मन में स्वयं ही अनुभव करता है। देकर हमारी आत्मा को जो शान्ति होती है यह सुख तमाम सुखों से श्रेष्ठ है।

आत्मा की संकीर्णता छोड़िए। यदि आप दूसरों को देंगे, तो परमात्मा के अक्षय भण्डार में से आपको अधिकाधिक प्राप्त होगा, किन्तु यदि आप देने की पवित्र क्रिया में कंजूसी करेंगे, तो उस ईश्वरीय भण्डार से आपको मिलना बन्द हो जायगा।

जो उदार है, दानी है, सत्कर्मों में अपनी सामर्थ्य के अनुकूल दान

देता है, वास्तव में वही बुद्धिमान है तथा बुद्धिमानों के पास ही दैवी सम्पदाएँ रहतीहैं । देश, काल, पात्र तथा अपनी परिस्थिति को ध्यान मे रखकर कर्त्तव्य बुद्धि से द्रव्य, सेवा अथवा श्रम का दान करते रहना चाहिए ।

सात्विक दान ही परमगति को देने वाला मुक्ति स्वरूप साधन है । दान से त्याग, बलिदान, एवं वैराग्य की त्रिविध भव भय विनाशिनी अलौकिक-सुधा धारा उत्पन्न होकर हमें जगत का वास्तविक स्वरूप प्रदान करती है । ऐसा दानी भक्त जगत के समस्त कर्म करते हुए भी अहङ्कार स्वार्थ मोह माया से मुक्त रहता है । पाप और भव तापों में ऐसी शक्ति नहीं जो उसे विचलित कर सकें ।

५. इन्द्रियों का दमन

अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना, अर्थात् ऐसी शक्ति रखना कि सब इन्द्रियों पर काबू रहे, जैसा विवेक कहे वैसा ही कर्म किया जाय, निषिद्ध विषयों का सेवन न करना और निहित भोगों का भी उचित मात्रा से अधिक सेवन न करना मनुष्य का एक दैवी गुण है, जिसका प्रत्येक व्यक्ति को विकास करना चाहिए ।

आत्मवादी साधक इस शरीर रूपी रथ में जुते हुए पांच इन्द्रियों रूपी अश्वों को लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होने देता । इनको दृढ़ता से वश में करने की अद्भुत सामर्थ्य उसके पुष्ट मन और विवेक में होती है । वह प्रत्येक कार्य का अच्छा बुरा पहलू देखकर कार्य में प्रवृत्त होता है । क्षणिक सुख के प्रलोभन में मत्त हो कोई कार्य नहीं करता, प्रत्युत बल पूर्वक शास्त्रोक्त कार्यों की ओर मन मोड़ता है ।

इन्द्रियां दो प्रकार की है—ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियां । कान, त्वचा नेत्र, जीभ और नाक ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पाँव, वाक्, तथा उपस्थ कर्मेन्द्रियाँ हैं, किन्तु इनमें ज्ञानेन्द्रियां अधिक प्रबल हैं । इनमें से प्रत्येक में आसक्ति द्वारा अत्यन्त भयङ्कर पतन सम्भव है । वे ही सात्विक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति धन्य हैं, जो वासना की प्रबल तरङ्गों को अपने

विवेक द्वारा रोके रहते है और उन्हें पथ भ्रष्ट नहीं होने देते ।

विवेक द्वारा गहरी दृष्टि से देखने पर विषय भोग की निस्सारता प्रकट होती है । शास्त्रों के अध्ययन, सत्सङ्ग, ब्रह्मचर्य के द्वारा सांसारिकता के बन्धन से छूटकर शुद्ध बुद्धि का प्रकाश होता है । तृष्णा और आसक्ति की सारहीनता प्रकट हो जाती है । मन का संयम उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के लिए भोजन । अतः मन की चंचलता को दूर करने का सतत प्रयत्न करना चाहिए ।

विवेकी पुरुष इन्द्रियों को घोड़े कहते है और विषयों को मार्ग बताते हैं, तथा इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं ।

इन्द्रियों का दमन किस प्रकार करें ? मर्त्य प्रथम आस-पास का वातावरण स्वच्छ सात्विक और धर्म मे प्रवृत्ति बढ़ाने वाला होना चाहिए । सांसारिक विषयों के प्रति उदासीनता, भोगविलास के प्रति वैराग्य, तामसिक पदार्थों से सावधानी, कुकर्म, परनिंदा, दंभ, परदोष श्रवण, अत्याधिक कामना से बचना चाहिए । नियमानुवर्तिता का अभ्यास करना चाहिए । नियमित रहने से आलस्य दूर होता है और इन्द्रियों का अपना काम दृढ़ता से करने की आदत बनती है । योग आसनों से व्यायाम, प्राणायाम और पूजा भजन कीर्त्तन इत्यादि के अभ्यास से समस्त नीच भावनायें फीकी पड़ जाती हैं ।

जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा की अचल, अव्यय, अनन्त शक्ति में दृढ़ विश्वास है, उसकी इन्द्रियाँ बाह्य पदार्थों में नहीं भटकतीं, वह दुष्ट स्वार्थों में चित्त की स्थिरता भङ्ग नहीं होने देता । अतः आत्म श्रद्धा जाग्रत करके मन की शक्तियों का मालिक बनिये, उपद्रवी प्रलोभनों का निषेध कीजिए । मनोनियम के पूर्ण ज्ञान से युक्त होने पर संसार की वासनाओं के हलचल मचा देने वाले झकोरे तुम्हें चलायमान नहीं कर सकते ।

६. पूजा एवं अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण

भगवान् के अनेक नाम हैं, नाना रूप और शक्तियाँ है । सब देवता

एक ही ईश्वर के रूप हैं। किसी भी रूप की शास्त्रोक्त विधि से सच्ची पूजा करना तथा उत्तम कर्मों का आचरण दैवी प्रवृत्ति का एक शुभ लक्षण है।

गीता में स्वयं भगवान ने अपने सत्कर्मों द्वारा उन्हें पूजन का निर्देश किया है। अपने कर्त्तव्यों को सचाई से पूर्ण करते चलिए। जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों का शक्तिभर प्रयत्न करता है, वह मनुष्य रूप में देवता हैं। उसे सच्ची मनः शान्ति प्राप्त होती है।

दूसरों के सत्कार्यों में बाधा न डालिए। हो सके तो उसमें प्रेम पूर्ण योग देकर आगे बढ़ाइये। दूसरों की शुभ योजनाओं में, पवित्र कर्मों, धार्मिक अनुष्ठानों, दान इत्यादि में बाधा डालने वाले स्वयं नष्ट हो जाते है।

सत्कर्म ही श्रेष्ठ पूजा है। परमार्थ, सेवा, त्याग और निस्वार्थ प्रेम व्यवहार ही अपना दृष्टि कोण बना लेने से जीवन सुख शान्तिमय बन जाता है। विश्वप्रेम भी ईश्वर प्रेम के अन्तर्गत है। कर्मयोगी निस्वार्थ सेवा से अपनी चित्त शुद्धि कर लेता है। उसका व्यवहार सबसे प्रेम युक्त मिलनसार मृदुल होता है। उसमें सहनशीलता, सहानुभूति विश्व प्रेम, दया और सबसे मिल जाने की सामर्थ्य रहती है। देश सेवा, दरिद्र सेवा; रोगी सेवा, पितृ सेवा, गुरु सेवा यह सभी कर्म योग के अन्तर्गत हैं। ऐसे व्यक्ति के सब कर्म ब्रह्मार्पणम् होते हैं।

हमारा कर्म भगवान की पूजा तभी कहला सकता है जब उसमें दो भाव प्रधान रूप से हों। प्रथम तो उसमें ममता, आसक्ति एवं फलेच्छा का त्याग होना आवश्यक है। फल की इच्छा न रखते हुए वह कर्म करे। जैमिनी ऋषि के मतानुसार अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म ही वास्तविक कर्म हैं। निष्काम भाव से किया हुआ कोई भी कर्म वास्तविक कर्म है। श्रीमद्भगवद् गीता का प्रधान उपदेश कर्म में अनासक्ति ही तो है। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक कार्य करते हुए हमें इस बात का स्मरण

होना चाहिए कि हम इस कर्म द्वारा भगवान् की पूजा कर रहे है। जिन-जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में हम आ रहे हैं, वे भी भगवान् के ही स्वरूप है, समस्त जगत भगवान के एक अंश में स्थिर है, वे ही इस जगत के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं। इस प्रकार के निस्वार्थ कर्मों द्वारा ही पूजा संभव है।

७. कीर्तन-स्वाध्याय

मानवता के सच्चे उपासक को कीर्त्तन करना चाहिए। जिस बात का उच्चारण मन में बार-बार किया जाता है, वैसे ही विचार मन में आते हैं और वैसे ही संस्कार बनते हैं। कीर्त्तन में भगवान् के किसी गुणका बार-बार उच्चारण किया जाता है। उसमें भक्त तन्मय हो जाता है। भगवान् के रूप, गुण, शक्ति का कीर्तन वैसे ही सामर्थ्यवान् विचार उत्पन्न करने के साधन हैं।

इस गुण को अपने चरित्र में विकसित करने के लिये सत्सङ्ग और स्वाध्याय द्वारा सन्त महात्माओं के साथ कीर्त्तन करना चाहिए। श्रद्धा और भक्ति से लिये हुए नामों का व्यापक प्रभाव गुप्त मन आनन्द-विमुग्ध हो जाता है।

उस दैवी तादात्म्य के आनन्द की कल्पना वही कर सकता है, जो भक्त मीराबाई की भाँति सब कुछ भूलकर भगवान् श्रीकृष्ण में तल्लीन हो निरन्तर उनके भजन-कीर्त्तन में तन्मय रहता हो। कीर्तन से शरीर में दैवी रोमाञ्च हो उठता है। हृदय में भक्ति की कली प्रस्फुटित हो जाती है। धन्य तो वे साधक हैं, जो सांसरिक कार्यों से समय बचाकर भगवान् के विविध नामों, रूपों, लीलाओं का भक्तिपूर्वक श्रवण, कीर्तन करते हैं।

भक्त का यह कीर्तन मनुष्य में दैवी गुणों का विकास करने वाला है, कीर्तन जीव तथा परमात्मा के सम्मिलन का पवित्र साधन है, भगवत् प्राप्ति का खुला द्वार है। ब्राह्मणघाती, गुरुघाती पितृघाती एवं

चाण्डाल तक भगवान् के गुण तथा नामों का कीर्तन करने से शुद्ध हो जाता है। कीर्तन समस्त सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति का सरल उपाय है।

कीर्तन और साधारण गान में बड़ा अन्तर है। कीर्तन में भगवान् के प्रति श्रद्धा, प्रेम तथा सत्यता आवश्यक तत्व हैं। जब आप कीर्तन करें, तब सब सांसारिक चिन्ताओं का त्याग करके एक भाव से ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति में तन्मय हो जायँ। आपको मन-ही-मन अक्षय आनन्द की प्राप्ति होगी।

श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दकाके शब्दों में, 'भगवान् को सम्मुख समझते हुए उनके नाम का उपांशु जप एवं ऊँचे स्वर से कीर्तन करना, भगवान् के गुण, प्रभाव और चरित्र आदि का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक धीरे धीरे या जोर से खड़े या बैठे रहकर वाद्य-नृत्यसहित अथवा बिना वाद्य नृत्य उच्चारण करना तथा दिव्य स्तोत्र एवं पदों के द्वारा भगवान् की स्तुति प्रार्थना—यही उत्तम भक्ति को प्राप्त करने के साधन है।'

दैवी सम्पदाएँ विकसित करने के अभिलाषी मानव को प्रातः सायं अनन्यभाव से भगवान् का नाम-गुण-कीर्तन करना चाहिए। अपनी आत्मा को भगवत् प्रेम में इतना तन्मय कर देना चाहिए कि भगवान् के साथ एक रस, एक भाव हो जाये। भगवन्नाम के कीर्तन से भक्त ईश्वर की सर्वव्यापकता अपने अन्तर में तथा सर्वत्र अनुभव करने लगता है। भगवन्नाम गुण कीर्तन जप के साथ ही भगवच्चरित्र, भगवत्स्वरूप-रहस्य, भगवान् के माहात्मम्य, भगवान् के तत्त्व का निरूपण करने वाले और भगवान् की ओर लगाने तथा विषयासक्ति से हटाने वाले शास्त्रों, संत-वाक्यों का स्वाध्याय-अध्ययन-पठन भी अवश्य करना चाहिये।

८. स्वधर्म-पालन के लिये कष्ट-सहन-तप

मानवता की प्राप्ति के लिये मनुष्य को स्वधर्म-पालन करना चाहिए। चाहे कुछ भी हो, अपने कर्तव्य-पालन के मार्ग पर सब प्रकार के कष्टों का सामना करते हुए सदा डटे रहना चाहिये। स्वधर्म के लिये

बुद्धभगवान्-जैसी दृढ़ता होनी चाहिये। उन्होंने कहा था—

'इस आसन पर मेरा शरीर सूख जाय, माँस-त्वचा-अस्थि नष्ट हो जायँ, किन्तु मैं बहुकल्पदुर्लभ बोध प्राप्त किये बिना नहीं उठूँगा।'

यही वृत्ति, यही एकनिष्ठा, यही सतत उद्योग की भावना हममें से प्रत्येक व्यक्ति की होनी चाहिये। दृढ़प्रतिज्ञ स्वधर्म-पालन के लिये मार्ग में आने वाली प्रत्येक कठिनाई को धूल के समान समझता है।

प्रतिघात एवं प्रतिकूलता सच्चे दृढ़प्रतिज्ञ के सङ्कल्प को क्षीण नहीं करते, प्रत्युत प्रत्येक असफलता उसे नयी प्रेरणा और शक्ति देती है। भयङ्कर आँधी और तूफान में भी वह कर्तव्य पथ पर दृढ़ता से अग्रसर होता है और अपने लक्ष्य को ध्रुव की भाँति सदा सामने रखकर कार्य करता है। दैवी सामर्थ्य मिलकर उसे सङ्कल्पों में अपूर्व दिव्यता भर देती है।

विपत्तियाँ स्वयं उससे डरती हैं। वास्तव में आपत्तियाँ उन्हीं पर आती है, जो कठिनाइयों से डरते रहते हैं। जो व्यक्ति विपत्तियों से घबराता नहीं, वरन् उनका मुकाबला करने को सदैव तैयार रहता है, ने उसके पास फटकती तक नहीं।

दूसरे भले ही समझते रहें कि उस पर विपत्तियाँ आयी हुई हैं, किंतु वह इतना दृढ एवं आत्मसंयमी होता है कि उस विषम स्थिति में भी मन की शान्ति भङ्ग नहीं होने देता।

जो सौभाग्य में खुशी से नहीं नाच उठते, वे दुर्भाग्य के समय रोते भी नहीं। दैवी शक्ति में विश्वास रखने वाले व्यक्ति समझते है कि सदा ईश्वर की असीम शक्तियाँ उनके साथ हैं।

स्वधर्म-पालन करने वाले वीर-पुङ्गवों में आत्मवादी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, भक्तप्रवर ध्रुव, प्रह्लाद आदि सदा हमें प्रेरणा देते रहेंगे। वे कष्टों को देखकर कभी नहीं विचलित हुए। उनके मुख मण्डल पर चिन्ता और विषाद की लकीरें नहीं दीखीं।

सच्चा आत्मवादी पं० श्रीरामशर्मा आचार्य के शब्दों में कहता है—

"ऐ मेरे आने वाले दुःखो ! आओ ! मेरे बालको ! चले आओ ! अपनी भूलों के द्वारा मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है। मैं ही तुम्हें छाती से लगाऊंगा। दुराचारिणी वेश्या की तरह तुम्हें 'जारपुत्र' समझकर छिपाना या भगाना मैं नहीं चाहता। तुम सती-साध्वी के धर्मपुत्र की तरह आओ ! मेरे अञ्चल में क्रीड़ा करो। मैं कायर नहीं हूँ कि तुम्हें देखकर रोऊँ। मैं नपुंसक नहीं हूं, जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़-गिड़ाऊँ ! मैं मिथ्याचारी नहीं हूँ, जो अपने किये हुए कर्म का फल भोगने से मुँह छिपाता फिरूँ।

'ऐ कष्टो ! मैं तुम्हें देखकर घबराता नहीं, डरता नहीं ! तुमसे बचने के लिये मैं किसी की सहायता नहीं चाहता, वरन् एक कर्तव्यनिष्ठ बहादुर साधक की भाँति तुम्हें स्वीकार करता हूँ।'

आप भारत की महान् संस्कृति के महान् पुत्र हैं। पुण्य भूमि भारत के राजर्षियों के स्वधर्म-पालन, उनके दृढ़ संकल्प, निष्ठा एवं दृढ़ता को कौन नहीं जानता ? आप भी स्वधर्म पर डटे रहें। कष्टों की परवा न करें।

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥

अभ्यास जब दीर्घ काल तक निरन्तर सत्-सङ्कल्प से किया जाता है, तभी स्वधर्म-पालन की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

जिस मनुष्य ने कष्टों की परवा न करते हुए स्वधर्म पालन को ही अपने जीवन का मूल मन्त्र बना लिया है, वह सदा समुन्नत और प्रगतिशील रहेगा। उसके विचारों में दृढ़ता, सङ्कल्प में निष्ठा और भावनाओं में पवित्रता आ जायगी। मनुष्य अपने विचारों का ही फल है।

जिस व्यक्ति में अपने कर्तव्यों के पालन में दृढ़ता है, वह आवश्यकता के समय अपनी सारी शक्तियों को एक ही केन्द्र बिन्दु पर

एकाग्र कर सकता है। इस एकाग्रता से उसके शरीर, मन तथा मस्तिष्क की सभी शक्तियाँ उसके साथ रहती हैं और इष्ट-सिद्धि होती है।

२. अन्तःकरण की सरलता—आर्जव

मनुष्य का जैसा अपना अन्तःकरण है, वस्तुतः वैसा ही वह है। हमें अपने अन्तःकरण को छल, द्वेष, प्रपञ्च, दुरभि सन्धि से मुक्त रखना चाहिए। सरल अन्तःकरण वाले के लिये छिपाने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता। वह बाहर भीतर एक-सा ही होता है। हमें कुटिलता से बचना चाहिये।

अन्तःकरण को दूषित करने वाले अवगुणों में स्वार्थ और वासना अनर्थकारी हैं। वासना के उत्पात में मनुष्य का सम्पूर्ण स्वस्थान अस्त-व्यस्त हो जाता है। विषयभोगों से दूर रहने से अन्तःकरण में शान्ति आती है।

दुःखों से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है—अपने अन्तःकरण की स्थिति को उच्च बनाइये। जो आत्मा मङ्गलमय है, उसी में विहार कीजिये। क्षुद्र सांसरिक भोग त्याग दीजिये। परमात्मा के सत्-चित्-आनन्दस्वरूप पर विचार करने से अन्तःकरण की स्थिति ऊँची हो ती है, जीवन दिव्य बनता है।

पवित्र भावनाएँ दूसरों के प्रति सच्ची सहानुभूति और उच्चभाव हमारे अन्तःकरण की वृत्ति को ठीक दिशा में विकसित होने में सहायक होती हैं। सरल अन्तःकरण वाला स्वार्थरहित हो लोककल्याणकारी बातें सोचकर सेवा-मार्ग अपना सकता है।

जीवन की सरलता कल्याणकारी है। सन्त फ्रांसिस ने इसलिये जान-बूझकर दरिद्रता और सरलता अङ्गीकार की थी कि उससे प्रकृति और मनुष्य का अबाध्य सम्पर्क स्थापित हो सके। फ्रांसिस कहा करते थे कि प्रकृति से साहाचर्य स्थापित करने पर ही मनुष्य स्वतन्त्रता का अनुभव कर सकता है, क्योंकि तब उसमें किसी

प्रकार के ढोंग के लिए सम्भावना नहीं रह जाती। अतिरिक्त सभ्यता बनावटी जीवन की ओर ले जाती है। काम-धन्धों से छूटते ही आज का व्यक्ति चाहता है कि देहात या समुद्रतट आदि की ओर दौड़ पड़े, खेतों में रहे, सरिताओं के तटपर विचरण करे। इससे सिद्ध होता है कि बनावटी सभ्यता ही कुटिलता की जननी है।

बन्धुत्व और एकता के अभाव के कारण आज समाज में सर्वत्र स्वार्थ और आपाधापी मची हुई है। हर मनुष्य धोखा देकर कुटिलता से अपना काम बना लेना चाहता है। एक दूसरे के प्रति एक प्रकार का अविश्वास-सा छाया हुआ है।

यदि हम आन्तरिक कुटिलता का परित्याग करके भ्रातृत्व और बन्धुत्व के सरल विमल भावों को बढ़ायें और सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन करें तो मानव समाज में, घर-घर में, प्रान्त-प्रान्त में प्रेम, मृदुता और सहानुभूति की मञ्जुल धारा प्रवाहित हो उठे। सरलता के अभाव में बुद्धि का दुरुपयोग होता है। एक दूसरे के बीच स्वार्थ और कटुता की अलङ्घ्य दीवारें खड़ी कर ली गयी हैं। सरलता के प्रयोग में शुद्धता और प्रेम का प्रकाश होता है।

मनुष्यों ! अपने अन्तःकरण के मार्ग पर चलो ! तुम्हारे अन्तःकरण में ईश्वरत्व का निवास है। आत्मा के निर्दिष्ट पथपर चलने से स्वतः तुम उन्नति के मार्ग पर आरूढ़ होंगे।

ऊँचे विचार किस में नहीं आते ? कौन महत्वाकांक्षी नहीं होता ! किसकी अन्तरात्मा उच्च पद के लिए नहीं तड़पती ! किन्तु स्मरण रखिये, महत्ता का सेहरा उन्हीं के सिर पर बँधता है, जो रात दिन अपने अन्तःकरण के बताये दिव्य मार्ग पर लगातार चलते रहते हैं।

१०. अहिंसा

मानवता के विकास के इच्छुक को अहिंसा को धारण करना चाहिये। शरीर से किसी को कष्ट पहुँचाना मात्र ही हिंसा नहीं है, मन

और वाणी तक से किसी को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिये। किसी को अपशब्द कहकर कटु या आवेशपूर्ण वचन कह देना भी एक प्रकार की हिंसा है। गुप्तरूप से किसी के विरोध में ईर्ष्या-द्वेष के विचार रखना भी हिंसा है। अतः हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारा व्यवहार ऐसा हो जो किसी के मन को दुःख न पहुंचाये। हिन्दू-शास्त्रों में तीन प्रकार के पापों से बचने को कहा गया है—१—कायिक अर्थात् शरीर से होने वाले, २—वाचिक (वाणी से होने वाले) ३—मानसिक (दुर्विचार)। इनसे बचने से हम अहिंसा के पथिक बन सकते हैं।

हिंसक में कई दूषित प्रवृत्तियाँ होती हैं। वह अहंवादी होता है, अपने मुकाबले में किसी को नहीं समझता, क्रोध करता है और व्यर्थ दूसरों दण्ड देने को की सोचता है,दूसरे के उत्कर्ष को देखकर जलता है। ये वृत्तियां घातक है।

अहिंसा सब धर्मों का सार तत्व है। जिन व्यक्तियों ने हिंसक और शोषक वृत्ति को त्याग दिया है, वे मानवता के मुकुटमणि हैं।

अहिंसा का व्यवहार उसके व्यापक अर्थ में करना चाहिए। व्यंग्य, कटाक्ष, निन्दा, द्वेषपूर्ण झूठ व्यवहार—सब हिंसक वृत्ति में शामिल हैं। परदोष दर्शन, दूसरों की कटु आलोचना,—साम्प्रदायिकता सब मन में कुसंस्कार उत्पन्नकर अन्तःकरण को दूषित बनाते हैं। पर उत्कर्ष न सहना, दूसरे के हित का नाश करना-करवाना और होते देखकर प्रसन्न होना किसी को किसी प्रकार का कभी दुःख न हो—इसके विरुद्ध कल्पना करना आदि सभी हिंसा है, अतः त्याज्य हैं। अहिंसा-व्रत के पालन के लिये शुद्ध अन्तःकरण, धैर्य, सुगठित शरीर और दृढ़ आत्मा—सर्वत्र आत्मदर्शन की आवश्यकता है।

११. सत्य, मधुर और हितकर भाषण

अन्तःकरण एवं इन्द्रियों द्वारा जैसा मन में सत्य विश्वास और

निश्चय किया हो, ठीक वैसा ही प्रिय शब्दों में, सुनने वाले के हितकी भावना रखकर कहना एक दैवी गुण है, जिसे सब उन्नति चाहने वाले व्यक्तियों को धारण करना चाहिए ।

मधुर भाषण और अपनी बातचीत में सुखद, श्रुतिमधुर, प्रिय वचनावलि का प्रयोग एक ऐसी शक्ति है, जो सर्वत्र फलदायक है । आप कोई भी क्षेत्र ले लीजिए । मधुर शब्दावली आपको सदैव लोगों का प्यारा बनायेगी । व्यापार, वाणिज्य, नौकरी, सार्वजनिक सम्बन्ध, परिवार तथा इष्ट-मित्र सभी में मधुर भाषण श्रेष्ठ फल देने वाला है । भगवान् ने इस गुण को धारण करने का निर्देश मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति को दृष्टि में रखकर ही किया है ।

इस दैवी गुण को विकसित करने के लिये दो तत्व विशेष रूप से स्मरण रखने चाहिये—

१—मन में दूसरों के प्रति मैत्रीभाव धारण करना, शुभ चिन्तन, शुद्ध सात्विक विचार और दूसरों के प्रति अपने अन्तर्मन में कल्याणकारी भावना धारण करना ।

२—इस शुभ चिन्तन को प्रिय एवं मधुर शब्दों में ही कहने का सतत प्रयत्न । भाषा पर विशेष ध्यान रखना कि कही हुई बात कटु होते हुए भी अनुचित प्रतीत न हो । मधुर शब्दों और कला-चातुर्य के प्रयोग से दूसरा व्यक्ति आपकी कठोर बात भी सहन कर जाता है । इसी से कहा गया है—

वशीकरन एक मन्त्र है तज दे वचन कठोर ।

प्राचीन ऋषि-मुनि सदा से हमें प्रिय शब्दावलि का प्रयोग करने की सलाह देते आये हैं—

मधुमतीः मधुमतीभिः सं पृच्यन्ताम्

(यजुर्वेद १।२१)

अर्थात् संसार के मनुष्यों ! मीठा बोलो। मधुर भाषियों के साथ रहो। जो मधुरता अपनाते है, उनके लिये सभी अपने बन जाते हैं।

मधु मे अन्तरास्ये (भवतु)

(पैप्पलाद-संहिता)

अर्थात् मेरे मुख के भीतर मधु हो। मैं सदा मीठा बोलूँ।

जाया पत्ये मधुमती वाचं

(अथर्ववेद ३।३०।२)

स्त्रियाँ सदा-सर्वदा मधुर वाणी बोलें।

उपर्युक्त तत्वज्ञानियों ने जिस तथ्य की ओर संकेत किया है, वह यह है कि हम किसी से कभी भी कर्कश व्यवहार न करें। कोई अप्रिय बात भी कहनी हो, तो यथासम्भव मधुर शब्दों का ही प्रयोग करें। कटु शब्दों से राक्षसत्व प्रकट होता है। शब्दावली का माधुर्य देवत्व का प्रतीक है। अतः थोड़ा बोलिये; पर मधुर बोलिये, सरस बोलिये। ऐसी भाषा का प्रयोग कीजिये; जो लोगों के मर्म में प्रवेश करे और स्थायी प्रभाव अङ्कित करे।

हे मनुष्यों ! मधुर बोलिये, उसके मीठे फल जीवन भर आपको मिलते रहेंगे, पर इतना नैतिक साहस रखिये कि अनुचित, असत्य, उद्दण्ड के प्रति आप विरोध कर सकें। अन्याय के प्रति सतर्क रहकर सर्वत्र मधुरता बिखेरते रहिये।

मधुर भाषण करने वाले की जिह्वा पर साक्षात् सिद्धियाँ निवास करती है। शुद्ध अन्तःकरण द्वारा जैसा शुभ निश्चय हो, ठीक वैसा ही हमें नित्यप्रति के मधुर व्यवहार, दैनिक वार्तालाप तथा आचरण में लाना चाहिए—यही दैवी सम्पदा का लक्षण है। शास्त्रकारों का वचन है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

अर्थात् सत्य बोलिये और मधुर बोलिये। कटु सत्य मत बोलिये। दैवी वाणी का मूल, अन्तःकरण का औदार्य प्रेम, प्राणीमात्र के लिये आत्मबुद्धि उत्पन्न करता है।

प्रिय भाषण के साथ संसार की सहानुभति है। मीठी वाणी का खरे रुपये की तरह सर्वत्र स्वागत होता है। माधुर्य सार्वजनिक जीवन का रस है। पर केवल वाक्यों की बाह्य मधुरता ही अपेक्षित नहीं है, उसके साथ हित भावना भी अवश्य होनी चाहिए। अहितकर मधुर शब्द तो ठगों की सम्पत्ति है।

१२. अक्रोध

क्रोध मनुष्य की निर्बलता का सूचक है। इसके विपरीत शान्तभाव आन्तरिक शक्ति और मानसिक सन्तुलन का द्योतक है। क्रोधी व्यक्ति तनिक सी देर में राक्षस बन जाता है और आवेश में उचित अनुचित, सत्य-असत्य का विवेक खो बैठता है।

क्रोध से मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, जिससे सुन्दर तथा आकर्षक व्यक्ति भी भयङ्कर राक्षसस्वरूप लगने लगता है। देवताओं के मुख मण्डल पर दिव्य मुसकान खेलती है। राक्षस हमेशा क्रोध में भरे रहते हैं। क्रोध की स्थिति उत्तम मनुष्य की स्थिति नहीं है। क्रोध का हमारे शरीर पर भी बड़ा ही दूषित प्रभाव पड़ता है। अनेक व्यक्तियों के गिरे हुए स्वास्थ्य का कारण स्थायी रूप से मुख और मन में रहने वाली विकारमयी स्थिति ही है। अतः यह दुष्ट मनोविकार सर्वथा त्याज्य है।

अक्रोध अर्थात् क्रोध का न करना, सदा प्रशान्त और सन्तुलित बने रहना ही शक्तिशाली बने रहने का मार्ग है। मनोविकारों के ऊपर कठोर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है। वाग्भट के अनुसार—

धारयेत्तु सदा योगान् हितैषी प्रेत्य चेह च।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रियः॥

'जो मनुष्य लोक और परलोक में सुख चाहता है, उसे चाहिये कि

जितेन्द्रिय होकर लोभ, द्वेष, मत्सर और क्रोध इत्यादि मनोविकारों को रोके।'

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
(गीता)

'आत्मा का (और शरीर का भी) नाश करने वाले नरक के तीन दरवाजे हैं—काम, क्रोध और लोभ। इसलिए इनको छोड़ना चाहिए।'

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां
देहस्थितः देहविनाशनाय।
यथास्थितो काष्ठगतो हि वह्निः
स एव वह्निर्दहते शरीरम् ॥

'मनुष्यों का पहला शत्रु क्रोध है। दूसरे शत्रु तो बाहर से चोट करते हैं, पर यह तो देह में रहते हुए ही देह का नाश करता है, जैसे लकड़ी में रहने वाली आग लकड़ी को जलाती है।'

पिथागोरस कहा करते थे कि क्रोध का प्रारम्भ होता है मूर्खता से और अन्त पश्चात्ताप में। चीनी कहावत है कि तुम जो आग शत्रु के लिये जलाते हो, बहुत बार वह उसकी अपेक्षा तुम्हें स्वयं ही अधिक जलाती है।

वास्तव में क्रोध मानव-वृत्तियों में सबसे अधिक निकम्मा है। इससे कुछ भी बनता नहीं, बिगड़ता ही अधिक है। जिस पर किया जाता है, उसकी अपेक्षा करने वाले को क्रोध से अधिक हानि पहुँचती है।

अक्रोध अर्थात् शान्तभाव धारण कीजिये। ठन्डा लोहा गर्म लोहे को काटता है। क्रोध करना शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से हेय है। इससे मन में भयंकर उद्वेग, थर-थराहट, कम्पन, जलन, दूषित मनःस्थिति उत्पन्न होती है। अन्तःकरण की शान्ति भङ्ग हो जाती है। बुद्धि पर उद्वेग का पर्दा-सा छा जाता है और सामाजिक कलह की नींव पड़ती है।

क्रोधको त्याग दीजिये। क्रोध एक प्रकार का पागलपन है, जिससे सत्संकल्पोंका विनाश होता है। क्रोधी मनुष्य बड़े-से बड़ा अन्याय करने से नहीं हिचकता। क्रोध के साथ द्वेष मिलकर हमारी न्यायान्याय-की वृत्तिको पङ्गु कर देता है। प्रायः हम ऐसी बात कर बैठते हैं, जो हमारे भविष्यके लिये घातक सिद्ध होती है। दैवी सद्गुणोंका विकास करनेवालेके लिये क्रोध साक्षात् विषतुल्य है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि क्रोध एक प्रकारकी मानसिक एवं स्नायविक दुर्बलताका प्रकाशन है। दृढ़ संकल्प एवं स्थिर मानसिक शक्तिवाले पुरुष क्रोधके दुःखदायी प्रभावोंसे मुक्त रहते हैं दैवी सम्पदावाला नररत्न अपने शत्रुपर भी क्रोध नहीं करता प्रत्युत प्रेमपूर्ण उपायोंसे उसे संतुलित करता हैं। स्मरण रखिये—चिन्ता, घृणा, दुराव, क्रोध, ईर्ष्या मनुष्यकी शक्तियोंको क्षीण करते हैं। ईश्वरकी इच्छा है कि आप शान्ति-पूर्वक संतुलित रहें। अतः क्रोधको छोड़ दीजिये।

१३—कर्मों में कर्तापनके अभिमानका त्याग

मनुष्यके साथ दैवी इच्छा और दैवी शक्तिका साहचर्य रहता है। यह गुप्त दैवी शक्ति हमें अप्रत्यक्षरूपसे सदा सहायता देती रहती है। हमारा तो पुरुषार्थ रहता ही है, गुप्तरूपसे हमारे इर्द गिर्द हमारे वातावरण तथा मनमें ऐसी शक्तियाँ हैं, जो अचूक ब्रह्मास्त्र है। हम शरीर ही नहीं वरन् आत्मा—महान् आत्मा हैं, परम आत्मा हैं, अतः साक्षात् सफलताकी मूर्ति हैं। हम जिसे आत्मध्वनि कहते हैं, वह हमारे अन्तर से बोलनेवाला ईश्वर ही तो है। अतः जब हम कोई शुभ कर्म करते हैं, तब वास्तवमें हमारे माध्यम से ईश्वर ही वह कार्य कराता है।

हमारे द्वारा जो बड़े-बड़े महत्वपूर्ण कार्य सफल होते हैं, वे वास्तव मे हमारी इसी गुप्त ब्रह्मशक्ति द्वारा होते हैं। हम तो जगन्नियन्ता ईश्वर के हाथ में एक औजार मात्र हैं। हमारे जरिये से ईश्वर अपनी सदिच्छाएँ र्ण किया करता है। हम जो कुछ सफलता लाभ करते हैं, उसका श्रेय

हमें नहीं, ईश्वरको ही है । अतः कार्योंमें कर्तापनका अभिमान त्याग देना चाहिये ।

हम निरन्तर कार्य करें, क्योंकि कार्य करना तो हमारा पुनीत कर्तव्य है । सच्चा साधक मनोयोगसे काम करता है, पर निःस्वार्थ एवं निष्कामभाव रखता है । 'भगवान् ही मेरे द्वारा अपने पवित्र कार्य करा रहे हैं,—ऐसा भाव सदा वह मनमें रखता है । वह अपनी सफलताका सम्पूर्ण श्रेय भगवान्‌को ही देता है । इसकी क्रियाएँ और दैनिक कार्य अहंकारप्रेरित न होकर प्रभु-प्रेरित हुआ करते हैं ।

'परम प्रभु ही मेरे हाथसे सब कुछ करा रहे हैं । मेरे कार्योंकी बागडोर तो मेरे परम प्रभुके कर-कमलों में है उन्हीं की शक्ति से मेरा समस्त कार्य सम्पन्न होता है । मैं तो उनके हाथमें एक यन्त्र (Instrument) मात्र हूँ ।,—इस विनीत आत्मसमर्पण प्रधान भावको मनमें रखनेसे मनुष्यकी उन्नति होती है । वेदोंमें कहा भी है—

पुरुष एवेदं सर्वम् (ऋग्वेद १० । ९० । २)

यह सम्पूर्ण विश्व परमात्माका ही रूप है । संसार को परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिये । अपने कर्तापन का अभिमान त्याग देना चाहिये ।

प्रजापतिः बहुधा वि जायते" (अथर्ववेद १० । ८ । १३)

इस विश्वमें परमात्मा ही अनेक रूपों में जन्म ले रहा है । संसारके सब प्राणधारी उस एक परमात्मा की प्रतिमूर्तियाँ हैं ।

मर्त्या ह वा अग्रे देवा आसुः (शत० ब्रा० ११-१-२-१०)

मनुष्य शुभ कार्य करके देव बनते हैं । अतः शुभ कार्य (कर्तापनका त्याग कर) करो और इसी शरीर से भूसुर का पद प्राप्त करो ।

हे मनुष्यो ! यह संसार सर्वज्ञ सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परमात्माकी प्रकृति द्वारा ही संचालित है, उन्हीं की लीलाभूमि है । यहाँ का प्रत्येक जीव (हम और आप) उसी सूत्रधार की कठपुतलियाँ हैं ।

अतः हमारी सारी सांसारिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक सफलताओंका श्रेय उसी महामहिम ईश्वरको है।

'मैं तो ईश्वर का एक निमित्तमात्र हूं।'--यह भाव मनमें रखकर हम स्वयं अपने मनको ईश्वरमय कर लेते है, अन्तःकरणकी पवित्रता, शान्ति और शीतलता प्राप्त करते हुए हम अपने अन्दर गतिशील सर्वव्यापक परमात्माको बार-बार स्मरण करनेसे हमारी जन्म-जन्मान्तर की मलिन वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

अपने ईश्वरीय रूप पर विचार कीजिये। आप नित्य शुद्धबुद्ध, मुक्तस्वरूप, अचिन्त्य अखण्ड चेतन, अमल सुखराशि है। अज्ञानवश अपने स्वरूप को विस्मृतकर व्यर्थ दुखी और अभिमानी बन रहे हैं। ज्ञानकी पैनी कृपाणसे अज्ञान पाशको काटकर स्वच्छन्द आत्मा बनें अपने। स्वरूप को पहचानें।

मान, बड़ाई, प्रशसा तथा धर्मोंमें अभिमान प्राप्त करने की इच्छा खाजकी भाँति एक बड़ा सुहावना रोग है। इसके वशमें हो जानेपर सत् कर्मोतकको अभिमानकी अग्निमें होम देता है, प्रमादी बन जाता है, अपने भाग्यपर इतराता है।

पर यह सब कुछ मनुष्य के पतनका सूचक है। कर्तापन का अभिमान एक संक्रामक बीमारी है, जो मनुष्यको अधोगतिमें पहुंचा सकती है। अतः इस दुर्गुण से बहुत सावधान रहना चाहिये।

तुम महान् हो, पर तुम्हारी महानता का रहस्य गुप्त ईश्वरीय शक्ति ही है। अपनी इस दैवी महानता को पहचानो और उसे समझने में, खोजनेमें और प्राप्त करने में तन्मयता से जुट जाओ।

१४--शान्ति, अन्तःकरणकी उपरामता—

भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यका चौदहवाँ गुण उपरामता माना है। उपरामताका अर्थ है— चित्त की प्रशान्त स्थिति, चित्त में चंचलता का न होना। अशान्त मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता और चित्तकी

चंचलता से मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों का क्षय हो जाता है। भगवान् ने स्वयं लिखा है—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शाक्योऽवाप्तमुपायतः॥

(गीता ६। ३६)

अर्थात् जिसका मन वश में नहीं है, उसके लिये योगको प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है, किंतु मनको वशमें करने वाले प्रयत्नशील पुरुष साधन-द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि चंचल चित्त का निग्रह अत्यन्त कठिन है। अर्जुन-जैसे महावीरों सम्मुख भी मनोनिग्रह की सीढ़ी पर सबसे अधिक कठिनाई पड़ी थी, किंतु बिना एकाग्रता के मानसिक शक्ति और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

वास्तव में यह कहना सत्य ही है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मनुष्य का मन ही जगत् के बन्धन और मोक्षका प्रधान कारण है।

दैवी सम्पदाएँ प्राप्त करनेवाले पुरुष के मनमें चंचलता नहीं रहती। वह तनिक-सी बात से उतावला नहीं होता। उतावलेपन को वह एक मानसिक कमजोरी मानता है। हृदयकी वासनाएँ, अभद्र इच्छाएँ एवं सांसारिक कामनाएँ इधर-उधर दौड़ नहीं मचातीं, उसका मन अप्रिय विषयों में नहीं भटकता। वह उद्देश्यरहित होकर निष्प्रयोजन वस्तुओं की ओर नहीं दौड़ता। उसके अन्तःकरण-प्रदेशमें तो सदा एकाग्रता, शान्ति एवं आनन्दका साम्राज्य छाया रहता है।

उत्तम पुरुष अपने जीवनके प्रकाशमय, आनन्द एवं प्रेममय पहलुओंपर ही अपने मानसनेत्र एकाग्र करता है। उसका अन्तःप्रदेश विक्षेपरहित शान्त अवस्थामें रहता है। आत्माके आनन्दमें मग्न रहनेके कारण उसके पास चञ्चलता नहीं आती।

चित्त की चञ्चलता मनुष्य की एक बड़ी कमजोरी है। अनेक व्यक्ति तनिक सी बातों में उद्विग्न हो जाया करते हैं। इस ओर ध्यान न देने से यह मानसिक रोग उनके स्वभाव को चंचल बना देता है। चिड़चिड़ा व्यक्ति जरा-जरा सी बात पर यों ही बिगड़ने लगता है। स्नायविक दुर्बलता का शिकार होने के कारण उसके मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु कम्पायमान रहते हैं।

स्मरण रखिये चञ्चलता और उद्विग्नता से आपकी मानसिक शक्तियों का ह्रास होता है। जरा सोचकर देखिये, जिस दिन आप उदिग्न रहते हैं, उस दिन आप कुछ भी स्थायी कार्य नहीं कर पाते। आप कोई भी अच्छी और उपयोगी बात सोच ही नहीं पाते। मनोवेगों का यह ताण्डव छोड़ देना चाहिए और स्थिर एवं सन्तुलित चित्त से ही कार्य करना चाहिये। ऐसे मानसिक उद्वेगों से आन्तरिक स्थिति क्षत-विक्षत होती है।

आप पूछते हैं, अन्तःकरण की उपरामता को प्राप्त करने के क्या उपाय हैं ? हमारा मन एकाग्र क्यों कर हो ?

इसके लिये भगवान् ने दो ही उपाय बतलाये हैं—

१—मन को पुनः पुनः किसी शुभ कार्य या विचार में एकाग्र रखना।

२—वैराग्य का अभ्यास।

मन को बार-बार दुश्चिन्ताओं से मोड़कर एकमात्र अपने दिव्य शक्तिमय रूप पर एकाग्र करना चाहिए। पहले तो मन दौड़-दौड़कर विषयों की ओर भागेगा, पर बाद में उसकी चञ्चलता नष्ट हो जायगी।

वैराग्य का अभ्यास कीजिये। सांसारिक पदार्थों का अस्थिर अनिाय स्वरूप समझ में आने पर जब जीव सर्वथा वितृष्ण हो जाता है, तब सद्-विवेक के नेत्र खुलते हैं।

हमें विषयों से आकर्षण हटाकर सौन्दर्य के उद्गम-स्थान अपनी

आत्मा पर दृढ़ता से मन को एकाग्र रखना चाहिए। माया-मरीचिका से वितृष्ण होते ही वैराग्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं और सम्पूर्ण अविद्या दूर हो जाती है।

मन को वश में करने के लिये जीवन को नियमों में बाँधना चाहिए। एक अच्छी दिनचर्या बनाइये। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त से लेकर रात्रि में शयन तक क्या-क्या सांसारिक कर्तव्य, दैनिक ध्यान प्रार्थना, पूजन-अर्चन संध्या-उपासनायें होनी चाहिए—इसका ब्योरा तैयार कीजिये और उस पर दृढ़ रहिये।

सात्विक कार्यों के लिये मन को सदा प्रोत्साहन देना चाहिए। दुष्कर्मों में भागने पर ताड़ना और भूल से पाप हो जाने पर पश्चात्ताप करना चाहिए। अच्छे साहित्य का नियमित स्वाध्याय, उस पर मनन और चिन्तन खूब होना चाहिए। जिसे उत्तमोत्तम पुस्तकों के पठन-पाठन का सौभाग्य प्राप्त है, उसके लिये चञ्चल लक्ष्मी का शुष्क विनोद किस अर्थ का है ?

हरे-भरे वन में भी भूखों मरने वालों और ज्ञान प्राप्त करने के इतने सुलभ और सस्ते साधनों के होते हुए भी ज्ञानविहीन रहने वाले मनुष्यों में क्या अन्तर है ?

गरीबों को दरिद्रता से छुड़ाने की, दुखियों का दुःख दूर करने तथा शरीर और मन को नीरोग रखने की जितनी शक्ति सद्-ग्रस्थ में होती है, उतनी और किसी चीज में नहीं है।

सद्ग्रन्थों से सद्विचारों को त्याग दो, जो आत्मा को कष्ट दें। अनीति और अधर्म के कुविचार सर्वथा त्यागने योग्य हैं—

अप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे। —ऋग्वेद

अर्थात् कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहो। ये अपने धारण करने वालों को नष्ट कर देते हैं।

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।

(अथर्व० २०।९६।२४)

अर्थात् मानसिक पापों का परित्याग कर दीजिये । मन में जमी हुई पुरानी जीर्णवासना ही दुष्कर्म कराती है ।

जब जब मन सांसरिक विषय-वासनाओं की ओर भागे, तब-तब उसे आग्रहपूर्वक पवित्र विचारों में दृढ़ कीजिये । परमेश्वर के दिव्य गुणों का चिन्तन कीजिए ।

'योगदर्शन' आपका प्रिय ग्रन्थ होना चाहिए । उसमें वर्णित मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा आदि वृत्तियों का अभ्यास करना चाहिये । समाधि और प्राणायाम आदि भारतीय ऋषियों के जाँचे हुए चित्त को एकाग्र करने के साधन है । मन में पृथक् हटकर उसके नाना कार्यों को देखिए और सतर्क चौकीदार की तरह वासना, ईर्ष्या, द्वेष और मिथ्या भय को प्रविष्ट न होने दीजिये । धैर्यपूर्वक निरन्तर अभ्यास से चञ्चलता दूर कीजिए ।

१५. निन्दा और चुगली आदि का त्याग

अपने से विद्या, बुद्धि, धन आदि की ऊंची स्थिति रहने वालों की अथवा अन्य किसी की भी निन्दा करना तथा दूसरों की चुगली खाना मनुष्य का एक विकार है । ऐसा करने से द्वेष बढ़ता है । मन उद्वेग से परिपूर्ण हो उठता है । शत्रुता का भाव पनपता रहता है, जो मनुष्य को अग्नि की तरह जलाता रहता है—

आरे द्वेषांसि सनुतर्दधाम । (ऋग्वेद ५।४५।५)

अर्थात् द्वेष का परित्याग कर देना ही उचित है । जो द्वेष करता है, उसका अपना ही अहित होता है ।

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा ।

(अथर्ववेद ७।५२।२)

अर्थात् ऐसा कार्य करो, जिससे द्वेष नहीं, प्रेम बढ़े। निन्दा-चुगली से पारस्परिक विरोध बढ़ता है, अतः उन्हें मत करो।

दूसरों की खराबियां निकालने, न्यूनताओं का प्रदर्शन करने और निन्दाचुगली करने से हमारा अन्तःकरण कालिमा से भर जाता है। हमें सर्वत्र बुराई-ही बुराई दृष्टिगोचर होती है। हमारे अन्दर का मानसिक वातावरण तमोगुणी रहता है और हमारे सद्गुणों का ह्रास होने लगता है।

जिस प्रकार एक छोटे से पत्थर से सम्पूर्ण सागर में कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही दोषों का तथा अशुभ आचरणों का निरन्तर स्मरण कराने वाले निन्दा और चुगली के छोटे-छोटे विकार तरङ्ग की भाँति अन्तःकरण के रग-रेशे को कम्पितकर देते हैं। जैसे पत्थर से स्वच्छ पानी गंदला हो जाता है, वैसे ही मन कुप्रवृत्तियों, आसुरी विचारों और घृणित दुर्भावों से भर जाता है।

दोष-दर्शन की दुष्प्रवृत्ति हमारे मन में दोषवृद्धि करती है। हम जैसा देखते हैं, वैसा ही ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति सदा दूसरों की निन्दा किया करता है, वह चुपचाप अपने आपके बड़प्पन का ढोंग करता है। निन्दा तो स्वयं मनुष्य की अपनी कमजोरी का परिचायक दोष है। यह उन पापमयी प्रवृत्तियों और आसुरी विचारों का प्रकाशन है, जो बहुत दिनों से उसके अन्तःकरण में जमे हुए थे।

अतः प्रत्येक कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि दूसरों के दोषों का चिन्तन-स्मरण करना तथा किसी से भी परदोष कहना छोड़ दे तथा सबके शुभ गुण देखे, कुछ कहना ही हो तो किसी के शुभगुण-आचरण का सच्चा वर्णन करे। मन में दूसरों के प्रति दुर्भावों को त्याग दे। छल-वृत्ति छोड़ दे। दम्भाचरण से सावधान रहे। हृदय, मन और वचन में एकता रखे। अच्छा ही सोचे और वैसा ही उच्चारण करे।

बुराइयों को द्वेष की अपेक्षा प्रेम से दूर करना सरल है। अतः निन्दा चुगली करने की प्रवृत्ति त्याग देनी चाहिए।

१६—हेतुरहित दया

सब जीवों पर दया कीजिये, पर उसमें अपना कोई छिपा हुआ गुप्त हेतु (लाभ उठाने की वृत्ति) मत रखिये। दया मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। परमपिता परमेश्वर स्वय दयासिन्धु कहलाते हैं। उनकी दया सर्वत्र फैली हुई है। जीव मात्र के प्रति उनकी दया का वर्णन करने की शक्ति किसी में नहीं है, हृदय ही उसका अनुभव कर सकता है। यही दैवी गुण हम ईश्वर पुत्रों को धारण करना चाहिये।

किसी स्वार्थ से प्रेरित होने पर दया का देवत्व नष्ट हो जाता है। अतः उसमें कदापि अपना स्वार्थ मत रखिये, वरना वह एक व्यापार मात्र बन जायेगा। जगत्-नियन्ता की अपरिमित दया सदा हेतु-रहित है। उनका कोई हेतु छिपा हुआ नहीं है।

आप जीवन की किसी भी स्थिति में न हों, हेतुरहित दया का प्रयोग कर सकते हैं तथा उससे मिलने वाले अमृतोतम आत्म संतोष से लाभ उठा सकते है। यदि उसके लाभ उठाने की भावना रही तो उससे आत्म सतोष न मिल पायेगा। जिस दया में लाभ उठाने की वृत्ति है, वह धर्म के नाम पर एक कलङ्क है। सच्ची दया हेतुरहित ही होती है।

१७—लोलुपता या आसक्ति का न होना

जीवन्मुक्त वही है, जो सर्वत्र समभाव है, जो मन-वाणी तथा शरीर द्वारा होने वाली समस्त क्रियाओं में ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव रखता है, जिसको संसार का कोई भी पदार्थ लुभा नहीं सकता तथा जिसके मन से विषयों के प्रति लालचका अभाव हो चुका है। एवं जो सम्पूर्ण पदार्थों से ऊपर उठकर परमात्मा के विशुद्ध स्वरूप या प्रेम में स्थित है।

द्वेष का मूल कारण वास्तव में आसक्ति है। मोहवश आसक्ति होती है। आसक्ति के कारण मनुष्य उचित-अनुचितकी परवा नहीं करता, अज्ञानवश विषयों से लिपटा रहता है। आसक्ति के कारण मनुष्य कर्तव्य पथ से च्युत होकर परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। इसके विपरीत आसक्ति रहित व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कार्यों में स्वार्थ हीन, राग-द्वेष रहित होता है। मान-बड़ाई, सांसारिक प्रतिष्ठा उसे अनुचित कार्यों में नहीं खींच सकती। ऐसे व्यक्तिकी बुद्धि सर्वत्र सम रहती है। वह अपने जीवन का सद्व्यय सहज लोक-हितकारी कार्यों में करता है।

जीवन के नाना कर्तव्य ईश्वरीय कर्तव्य समझ कर ही कीजिये। उनसे मिलने वाले लाभ में अपने को मत बाँधिये।

एक विद्वान् के ये वचन स्मरण रखिये—

यदि कर्म करते समय फल से मिलने वाले सुखका काल्पनिक महल न खड़ा किया जाय तो असफलता होने पर भी दुःख नहीं होता। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म को 'योग' कहा है यही कर्म की कुशलता है। ममता ही दुःख की जननी है, निस्स्वार्थ को शोक-संताप नहीं हो सकता।

उस परिमित और संकुचित स्वार्थ को त्याग दीजिये, जो सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने लाभ के लिये ही चाहता है। सच्चा स्वार्थ परमार्थ ही हो सकता है।

संसार के मिथ्या आकर्षण में भी मत फँसो। संसार के प्रति अधिक आसक्ति तथा लोभ तुम्हारे दुःख का कारण है। स्वयं मनुष्य का जीवन ही अस्थिर है, मरणशील है। यहाँ संयोग है तो वियोग भी है। उन्नति है तो अवनति भी है। संग्रह है तो नाश भी है तो मरण भी है।

यथा फलांना पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्॥

जिस प्रकार फल पककर गिरता अवश्य है, उसी प्रकार जन्म वाले का मरण निश्चित है।

जिस प्रकार मजबूत खंभेवाला मकान भी पुराना होने पर नष्ट हो जाता है: उसी प्रकार जरा और मृत्यु के वश में पड़े हुए मनुष्य नष्ट हो जाते हैं।

करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों सृष्टियाँ व्यतीत हो गयीं। सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायँगे। फिर इस क्षणिक जीवन और संसार में क्या आसक्ति की जाय।

यह आयु हिलते हुए पत्ते की नोक पर लटकती हुई जल की बूँद के समान क्षणभङ्गुर है। उसमें तुम क्या आसक्ति करते हो।

कोई आज मरा, तो कोई कल, कोई परसों। इस प्रकार सभी इस सीमारहित संसार से चले जा रहे हैं। कोई भी वस्तु, कोई व्यक्ति अपने साथ नहीं ले जा सका है। फिर इन सैकड़ों वस्तुओं में कोई क्या आसक्ति करे। इनका क्या लालच करे ?

१८—स्वभाव की कोमलता

स्वभाव की कोमलता देवताओं का गुण है, कठोरता और शुष्कता राक्षसों की सम्पत्ति है। जो देवत्व का विकास करने के अभिलाषी हैं, उन्हें मक्खन-जैसा सरल, स्निग्ध और निष्कपट स्वभाव रखना चाहिये। अन्तस्तल को सदा प्रेम रस से कोमल रखिये। आपका सबके साथ मृदुल व्यवहार होना चाहिये।

स्वभाव की कोमलता धारण करने से भगवान् की शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। भगवान् स्वयं कोमल हैं। जो सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त करता है, उसे वे अनायास ही क्षमा कर देते हैं। वे सबके प्रेमी, सुहृद् और रक्षक हैं। आध्यात्मिक समृद्धियों में स्वभाव की कोमलता सब से बड़ी सम्पदा है। लोग भौतिक धन और ऐश्वर्य इकट्ठा करने के

लिये रात-दिन चिन्ता करते हैं, पर आत्मा के साथ जन्म-जन्मान्तरौतक साथ रहने वाली आत्मिक सम्पत्ति—स्वभाव की कोमलता पर ध्यान नहीं देते। जब तक स्वभाव की कोमलता धारण नहीं की जाती, तब तक सफल वकील, वैद्य, व्यापारी, अध्यापक, कर्मचारी और कारीगर नहीं बना जा सकता। कोमलता धारण करने से क्रोध, कटुता, पशुता और दुष्ट मनोविकार नष्ट हो जाते हैं। जहाँ मिठास होगी, वहाँ कड़वापन कैसे शेष रह सकती हैं।

कोमल हृदय में भावुकता का होना आवश्यक हैं। कोमल हृदय वाला उदार होता है। सम्पूर्ण मानव-जगत उसका परिवार होता है। वह दूसरों का दुःख देखकर दुखी और सुख देखकर सुखी होता है। उसके मन में, व्यवहार में, वाणी में तथा दैनिक कर्म में मृदुलता छलकती रहती है। वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रीतिपूर्ण मीठी वाणी में बातचीत करता है, अपने व्यवहार में कहीं भी कठोरता नहीं आने देता।

किन्तु उस अति कोमलता से सर्वदा बचना चाहिये, जो अकर्मण्यता तथा निराशाजनक दीनता में परिणत हो जाती है, वह एक कमजोरी है। अतः मध्यका मार्ग ही अपनाना चाहिये। कोमलता मनुष्य की दीनता और कठोरता के बीच की स्थिति का नाम हैं। इस दैवी गुण के इच्छुक को यह ध्यान रखना चाहिये कि न वह दीन-हीन ही बन जाय और न वह राक्षसी कठोरता ही धारण कर ले।

हम देखते हैं कि दैनिक व्यवहार में अनेक व्यक्ति विशेषतः अफसर लोग कर्णकटु एवं कर्कश भाषाका प्रयोग करते हैं। मारपीट कर बैठते हैं। बोलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सिरपर डंडे मार रहे हों। उनके मुखसे भली बात भी कठोर और अरुचिकर प्रतीत होती है। उनके स्वरमात्र से असुरत्व प्रकट होता है। यजुर्वेद में कहा गया हैं—

मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

(यजु० ३६। १८)

हमें सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखना चाहिए। किसी प्राणी से नहीं, केवल उनके दुष्कर्मों से शत्रुता रखो।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।

(अथर्व. १।३४।३)

अर्थात् आते और जाते मधुरता बरसाओ। स्वभाव की कोमलता धारण करो। जहाँ जाओ, वहाँ प्रेम बिखेरो। जहाँ से आओ, मधुर स्मृति छोड़कर आओ।

यदि हम संसार में अपने पारस्परिक मेल और रिश्ते कायम रखना चाहते हैं, अनावश्यक भय, अपमान, निन्दा और दुःखमय स्थिति से बचना चाहते हैं, तो अवश्य ही हमें स्वभाव की कोमलता जैसे दैवी गुण की सिद्धि करनी चाहिए।

स्वभाव की कोमलता हमारी आत्मा का, ईश्वरत्व का अंश है। उसे अवश्य धारण करना चाहिए। हमारे हृदय की प्रत्येक भावना, हमारे शरीर का रोम-रोम कोमलता के भाव से भरा हुआ होना चाहिए। दैवी सम्पदा धारण करने के लिये हमें प्यार से मिश्रित वाणी का प्रयोग और तदनुकूल ही व्यवहार करना चाहिए।

१९—लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा

मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये हमारे शास्त्रों में व्यवहार के अनेक नियमों का विधान है। समाज की सुख-शान्ति के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ण के लिये सुनिश्चित कर्म का विधान है। अधिक से अधिक व्यक्तियों की भलाई का विचार करके इनका निर्णय किया गया है। अधिक सुख शान्ति और उन्नति के लिये हमें शास्त्रों में वर्णित धर्म-कर्मों और नीतिका आचरण करना चाहिए। शास्त्रविरुद्ध आचरण-व्यवहार करने में बड़ी लज्जा होनी चाहिए तथा शास्त्रोक्त वैध कर्म—सेवा, भक्ति, परिश्रम, सादगी, दान, स्वाश्रयता आदि शुभ कर्म लज्जा

छोड़कर करने चाहिए। शुभकर्मों में लज्जात्याग और अशुभ में लज्जा होनी चाहिए।

सच्चे मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रों का गहरा अध्ययन करे और ईश्वर के प्रति, अपने पूर्व पुरुषों के प्रति, अपने समाज और परिवार के प्रति अपने सब कर्तव्यों का पालन करता रहे। मन, बुद्धि और इन्द्रियों को शास्त्र सम्मत कार्यों में बाँधे रहे।

किसी को दुःख देने वाली लोक विरुद्ध वाणी न बोले, किसी का अनिष्ट न करे, अकारण ही किसी के साथ द्वेष या घृणा न करे, घृणित मादक द्रव्यों का सेवन न करे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष, अहंकार, दम्भ-दर्प, अभिमान आदि से दूर रहे। ऐसे कार्यों में सदा लज्जा का बोध करे।

सात्विक भोजन करे। यथाशक्ति यज्ञ-दान-पत और नियम का पालन करे। आत्मविद्या पढ़े और उसी के अनुसार आचरण करें। अपने व्यवहार में सदा साधुता और मिठास रखे। परमार्थ के उपकारी कार्यों (जैसे धर्मशाला बनवाना, कुंआ खुदवाना, छायादार वृक्ष लगवाना, प्याऊ चलवाना) में सहयोग प्रदान करे। गरीबों की, दीनों की, रोगियों की सब प्रकार सेवा करे, अपना काम अपने हाथ से करे, कुल परिवार की रक्षा करे और अन्त में अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित कर दे। शास्त्रों के द्वारा वर्जित कार्य कदापि न करे। इसी में हमें अधिकतम आनन्द मिल सकता है।

भारतीय शास्त्र, वेद, पुराण, उपनिषद् आदि नीति ग्रन्थों में सहस्रों वर्षों के ज्ञान का निचोड़ है। जो व्यक्ति मनमाना कार्य करता है, आत्म नियन्त्रण नहीं रखता, अपने शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन नहीं करता, वह परमागति (मुक्तिपद) और सुख (ब्रह्मानन्द) को प्राप्त नहीं होता है। इसीलिए हमें सदा कर्तव्य का ध्यान रखना चाहिए। शास्त्र विधि द्वारा नियत किये हुए कर्म ही हमारे करने योग्य हैं।

२०—व्यर्थ की चेष्टाओं का अभाव

इस दिव्य गुण को धारण करने से हम उन व्यर्थ की चेष्टाओं से छट जाते हैं, जो समाज में उचित नहीं है तथा हमारी शारीरिक या मानसिक शक्तियों का क्षय करती है। हमें उनसे कोई लाभ नहीं होता वरन् हानि होती है।

अनेक व्यक्ति बैठे-बैठे या चलते फिरते व्यर्थ की गन्दी चेष्टाऐं करते रहते हैं। और कुछ नहीं तो दूसरों के दोष ही निकालते रहते है, या अपनी कमजोरियां दूसरों के मत्थे मढ़ते रहते है। कुछ बकवास करते रहते हैं, बेमतलब की उक्तियां उच्चारण किया करते हैं या दूसरों को चिढ़ाया करते हैं। कुछ कुसङ्ग में समय नष्ट करते हैं। पक्षपात, चाप-लूसी और कपट की कुचेष्टाओं में फंसे रहते है। कुछ व्यक्ति फैशन या आडम्बरपूर्ण जीवन में ही लगे हुए हैं। कुछ अनुचित रीति से धन कमाने के लिये सट्टा, फाटका, ताश, चौपड़, शतरंज आदि खेलते रहते है, गन्दे तथा व्यर्थ के साहित्य का अध्ययन करते हैं। कुछ नाना व्यसनों में पड़े हुए हैं। इन सब व्यर्थ के कर्मो में लगे रहने के कारण उनका अधिकांश समय आलस्य, प्रमाद और अकर्मण्यता में व्यतीत हो रहा है। अपनी उन्नति और समाज की उन्नति के लिए हमें इन सबसे सदा बचना चाहिए।

पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क तथा अन्धानुकरण ने हमारे नवयुवकों की अनेक कुचेष्टायें बढ़ायी हैं। हमारी नयी पीढ़ी की बुद्धि प्रायः तामसी होती जा रही है। चाट, चाय, मादक वस्तु, अन्डे, मांस-मदिरा आदि अनेक अभक्ष्य पदार्थो के प्रयोग से हमने कितनी ही अनुचित वस्तुओं को अपना लिया हैं। ये हर दृष्टि से हानि कर और त्याज्य हैं। स्त्री-वर्ग में फैशन, व्यर्थ की टीपटाप, आभूषण प्रेम, दिखौवापन, इत्र-फुलैल आदि का बड़ा जोर है। फैशन के कारण पाप-वृद्धि हो रही है। विवाहों में वेश्याओं के नृत्य या गन्दे नाटक, गंदे

मजाक, उत्तेजक फिल्मों के प्रदर्शन, गन्दे गाने और बेहूदी चेष्टाऐं चलती हैं। ये सर्वथा त्याज्य हैं। दैवीगुणों की वृद्धि करने वालों को इनसे घृणा करनी चाहिए। हमारा अधिकांश समय इन्हीं तथा इस प्रकार की और चेष्टाओं से एवं विलासिता की वस्तुओं में व्यय हो जाता है। यही श्रम, धन और समय हम जीवनोपयोगी उच्चतर कार्यों में व्यय कर सकते है।

कुविचार कुचेष्टा का मूल है। मन से कुविचार निकालने से ही हम कुचेष्टाओं से बच सकते हैं। जो अच्छे विचार या अच्छी आदतें हैं, हम उन्हीं से प्रेम करें, उन्हें ही आचरण में उतारने का प्रयत्न करें तो निश्चय ही दैवींगुण प्राप्त कर सकते हैं।

२१—आत्मतेज की प्राप्ति

एक ही परमात्मा को ज्ञानीलोग अनेक नामों से पुकारते हैं। सम्पूर्ण विश्व और हम सब में आत्मा के रूप में वही ईश्वर प्रत्यक्ष हो रहा है। हम, आप और हमारे नगर, प्रान्त, देश के मनुष्यों में परमात्मा ही अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। संसार के सभी मनुष्य परमात्मा की ही मूर्तियाँ हैं—

पुरुष एवेदँ सर्वम्।

(ऋग्वेद १०।९०।२)

अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा का ही रूप है।

प्रजापति····बहुधा वि जायते।

(अथर्ववेद १०।८।१३)

अर्थात् इस विश्व में परमात्मा ही अनेक रूपों में जन्म लेता है।

अजायमानः बहुधा वि जायते।

(यजुर्वेद ३१।१९)

अर्थात् वह अजन्मा अनेक रूपों में जन्म लेता है। वह निराकार परमात्मा इस सारे चराचर जगत् में साकार है हमारे अन्दर से चमकने

वाला यह आत्मा न कभी मरता है न इसकी कभी क्षति होती है। आत्मा का गुण है दीप्ति या चमक। जो मनुष्यत्व के गुणों का विकास करते हैं, वे आत्मा के गुणों के विकास से अपने आपको प्रदीप्त कर लेते हैं। उनके मुखमण्डल पर एक प्रकार की सात्विक चमक या तेज छा जाता है। इसे आत्मतेज कहते हैं। दीप्तिमान् आत्माओं के सम्पर्क में रहकर हम अपनी आत्मा को आत्मतेज से प्रदीप्त कर लेते हैं। जो मनुष्य आत्मा के गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं, वे अपनी आत्मा को आत्म तेज से भर लेते हैं—

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।

(अथर्ववेद)

'तू शुद्ध तेजस्वी, आनन्दमय एवं प्रकाशमान आत्मा है। शुद्धता, आनन्द और प्रकाश का यह आत्मतेज ही तेरे मुखमण्डल से भासित होना चाहिए।'

जिस मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ अत्यन्त उन्नत और विकसित हो जाती हैं, यह चुम्बकीय शक्ति से युक्त एक महान् आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। उसके व्यक्तित्व से प्रकाशमयी आत्म-तरङ्गें निकलकर इधर-उधर अपना प्रभाव डाला करती तथा निर्मल प्रकाश का विस्तार करती रहती है।

मनुष्यो ! अपने आत्मा में देवत्व की सम्पदाओं को विकसित करो। आत्मतेज से आभासित हो जाओ। अपने आपको शरीर नहीं, आत्मा मानो। आत्मा ही आपके व्यक्तित्व का मूल स्त्रोत है। इसी में स्थित होंने से दृढ़ता और शक्ति आती है। आत्मशक्ति आप में प्रचुरता से विद्यमान है। सद्विचार सत्संकल्प और सद्व्यवहार से आत्मतेज प्राप्त करते रहो।

२२—क्षमा

पूरी शक्ति से सम्पन्न होने और बदला लेने के साधन होते हुए भी दोषी को सुधार का अवसर देने के दिव्य गुण को क्षमा कहते हैं। हमारे यहाँ कहा गया है—

देवा उन्न यथा पुनः ।

(ऋग्वेद १०।१३७।१)

हे देवो, तत्पुरुषो ! गिरे हुओं को फिर उठाओ ।

यह कार्य क्षमा नामक देवगुण द्वारा ही पूर्ण हो सकता है। गलती सबसे होती है । यदि हम गलती करने वाले को क्षमाकर सुधरने का अवसर दें तो उसका बड़ा उपकार होता है । अनेक मनुष्यों को पश्चात्ताप जाग्रत् हो जाता है और वे अज्ञान और कुसंस्कारों से मुक्त होते देखे गये हैं ।

प्रायः देखा गया है कि सजा का प्रभाव उतना नहीं पड़ता, जितना दोषी को उदारता पूर्वक क्षमा कर देने का होता है। गलती को स्वीकार करके आगे भूल न करने के संकल्प से मनुष्य उन्नतिशील बनता है । गलती को क्षमाकर उन्नति का अवसर देना देवत्व का सूचक है ।

जब हम गलती करते हैं, तब हमें यह ज्ञान नहीं होता कि हम गलती कर रहे हैं । विवेकशून्य अवस्था में हम पापकर्म कर बैठते हैं । बड़े से बड़ा दोषी भी अपने आपको निरपराध समझता है। मोह का पर्दा उसकी बुद्धि को भ्रमित कर देता है । ऐसे अज्ञानी और अपरिपक्व बुद्धि के व्यक्ति को सजा देना कौनसी बुद्धिमानी है ।

गलती पर क्रोध करना सहज है, पर सुधार का अवसर देना देवत्व है । गम्भीर पुरुष प्रेम तथा सहानुभूति से अपना कार्य निकालते हैं । क्षमा से दोनों ही पक्षों को लाभ होता है । आवेश में सम्भव है आप कुछ ऐसा कार्य कर जाँय, जिससे भविष्य में आपको दुःख उठाने पड़ें

और कई व्यक्ति सदा के लिए आपके शत्रु बन जाँय। यदि सहानुभूति पूर्वक दोषी को सुधारने का अवसर दिया जाय तो उसका चिरस्थायी प्रभाव दूसरे पर पड़ता है और शत्रु मित्र बन जाता है।

२३—धृति अर्थात् धैर्यधारण

धृति नामक गुण में धैर्य, सन्तोष, सहनशीलता और विपत्ति में भी अधीर न होना शामिल है। ये सब गुण हमें धैर्यधारण का उपदेश देते हैं।

आप जो भी कार्य करने निकलें, जो भी उद्देश्य आपके सामने हो किसी समय या किसी भी स्थिति में हों, धैर्य का गुण आपकी सहायता करने वाला है।

आपको अपनी कठिनाईयाँ अथवा प्रतिकूलतायें पर्वत के समान दुर्भेद्य और सिंह के समान भयङ्कर और डरावनी प्रतीत होती हों, फिर उनमें धैर्य धारण कीजिए। सब ठीक हो जायगा।

अधीर न होइए—घबराइए नहीं ! आप महान् शक्तिशाली आत्मा हैं। दैवी शक्तियों का पुञ्ज आप में छिपा हुआ हैं। आपको बकरी की तरह मिमियाना नहीं है, बल्कि सिंह के समान दहाड़ते हुए कर्त्तव्य-मार्ग पर डटे रहना है।

आपत्ति के सामने घबराइये या गिड़गिड़ाइये नहीं। यदि सच्चा प्रयत्न करने पर भी आप सफल न हो सकें तो कोई हानि नहीं। विजय के मार्ग पर चलते हुए मिलने वाली पराजय कोई बुरी चीज नहीं है।

प्रत्येक पराजय विजय की दिशा में कुछ आगे बढ़ जाना है। यह उच्चतर ध्येय की पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी कमजोरी है, अमुक तत्व में हम पिछड़े हुए है, या किसी विशिष्ट उपकरण पर हम समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है, जहाँ

हमारी निर्बलता है और जहाँ हमारी मनोवृत्तियाँ अनेक ओर बिखरी हुई हैं, जहाँ विचार और क्रिया में परस्पर विरोध चल रहा है, जहाँ दुःख, क्लेश, शोक, मोह आदि विरोधी इच्छाए हमें चञ्चल कर एकाग्र नहीं होने देती।

किसी न किसी दिशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है, मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ न कुछ सबल बना जाती हैं। हमारी विशृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए; क्योंकि उन्हें कड़वाहट को चखना पड़ा था। यदि उन्हें पराजय न मिलती तो वे महत्वपर्ण विजय कदापि न कर पाते। पराजय में भी धैर्य रखना विजय का चिन्ह है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

'विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा, सभा में बोलने की चतुरता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और शास्त्र सुनने में व्यसन – ये सब महात्माओं के स्वाभाविक गुण है।'

बीमारी में भी धैर्य धारण की अतीव आवश्यकता है। घबराहट से रक्त में गर्मी बढ़ जाती है। यदि धैर्य पूर्वक उपचार किया जाय, रोगी को साहस बँधाया जाय, तो अनेक परेशानियों से बचा जा सकता है। बीमार को जितना धैर्य मिलेगा, सान्त्वना मिलेगी, आराम मिलेगा, उतना ही दवाई का असर होगा।

दैवी शक्तियों का निवास आप में है। अतः धैर्य पूर्वक काम कीजिए। मजबूती से कदम आगे बढ़ाइये।

धैर्यवान् मनुष्य इस बात पर शोक नहीं करता कि मैं असफल हो गया हुँ या दूसरों की नजर में गिर गया हूँ, अथवा लोग व्यर्थ ही मुझ

पर दोषारोपण करते हैं। वह तो सोचता है कि मैं स्वयं अनेक उच्चतम शक्तियों से पूर्ण हूं, पुरुषार्थ धारण किये हुए हूँ। धैर्य ही समस्त सफलताओं का आधार है।

२४ – शौच अथवा पवित्रता

स्वच्छता देवत्व का लक्षण है। जो साफ—स्वच्छ है, वह देवता है। गन्दगी तो राक्षसों के पास ही पायी जाती है।

शौच का अर्थ विस्तृत है। यह दो प्रकार का होता है–(१) बाह्य शौच अर्थात् बाहरी स्वच्छता, (२) आन्तरिक शौच अर्थात् अन्दरूनी (मानसिक) पवित्रता।

आजकल लोग बाह्य (शरीर, वस्त्र, भवन इत्यादि की) स्वच्छता पर तो बहुत जोर देते हैं। सुन्दर स्वच्छ वस्त्र पहिनते हैं, सफेद पोश रहते हैं। नाना प्रकार से सफाई का ढोंग करते हैं। स्त्रियाँ बार-बार स्नान करती हैं। वस्त्र इत्यादि धोती हैं, स्नो-पाउडर आदि लगाती हैं। नदियों में देर तक स्नान करती रहती हैं। चौके-चूल्हे में भी सफाई का प्रयोग करती हैं।

(किंतु) ये सब बाहरी सफाई मात्र के प्रयोग हैं। यदि केवल स्नान मात्र से ही मनुष्य की मुक्ति सम्भव होती तो जल में बहने वाले तमाम जीव—जैसे मछली, कछुवा, मगर इत्यादि तो जन्म से ही मुक्त हो गये होते। किंतु ऐसा नहीं है। यदि आपने बाहर से स्वच्छता धारण कर ली है, अच्छे वस्त्र पहिन लिये हैं, माला, कन्ठी, टीका आदि भी लगा लिये है तो यही पर्याप्त नहीं है। आन्तरिक जगत् की दुर्भावनाओं, कुविचारों, कुसङ्कल्पों को दूरकर सद्विचार और सद्भावनाओं को धारण करना ही सच्ची पवित्रता है।

अपने दुर्गुणों को, कुसस्कारों को, ईर्ष्या, तृष्णा, चिन्ता आदि विकारों को, हीनता और गन्दे संस्कारों की दासता को हटाकर निर्भयता, सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवाभाव आदि पवित्र और आत्मिक प्रवृत्तियों को बढ़ाना करोड़ों प्रकार की बाहरी सफाई की अपेक्षा अच्छा है।

आत्मा को ब्रह्म के अर्पण करना आन्तरिक शौच है। जब तक अस्थिचर्म के पुतले में अहंभाव रहेगा, राग-द्वेष का संघर्ष चलता रहेगा, तब तक आन्तरिक शुद्धि सम्भव नहीं।

अपनी दुर्भावनाओं को परास्त कीजिए। कुविचार रूपी भयानक और बलवान् असुर ऐसे मायावी हैं, जो नेत्रों से तो दिखाई नहीं देते, पर अत्यन्त गुप्तरूप से मन के भीतरी कोनों में घँस बैठते हैं और ऐसे जीर्ण हो जाते है कि इनको परास्त करना कठिन हो जाता है।

एक विद्वान् ने सत्य ही लिखा है—'यह असुर और कोई नहीं, आपके दुर्भाव और कुविचार हैं। भीतर ही भीतर ये दुष्ट शरीर और मन को खा डालते है और अन्त में बड़ी निर्दयता पूर्वक इहलौकिक तथा पारलौकिक 'नरक की अग्नि' में जलने के लिए पटक देते हैं। खुदगर्जी कंजूसी, निष्ठुरता, झल्लाहट, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, पर-सुख-असहिष्णुता, कायरता अदि अपवित्र दुर्भावनायें जब भी अपने में दिखायी पड़ें, तुरन्त ही उनका विनाश करने के लिये तत्पर हो जाइये।

वास्तविक शुद्धि तो एकमात्र आत्मज्ञान से होती है। सच्चे आत्मज्ञानी के हृदय में प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के दिव्य भाव रहते हैं। इनको धारण करने से सच्ची शुचिता आती है। महाभारत में आया है—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

आत्मारूपी नदी हो, संयमरूपी पुण्य तीर्थ हों, सत्यरूपी जल हो, शील रूप तट हों और उसमें दया की तरङ्गें-उठ रही हों, युधिष्ठिर! उसमें स्नान करो। जल अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं कर सकता।'

२५—किसी प्राणी के प्रति द्रोह या वैरभाव न रखना

मनुष्य जब स्वार्थी बन जाता है, तब उसके आत्मभाव का दायरा

संकुचित हो जाता है। इसके वशीभूत होकर वह एक संकुचित दायरे की भलाई सोचता है और उसमें अन्यों की अपेक्षा अधिक दिलचस्पी दिखाता है। वह अपने-आपको दूसरों से पृथक् समझता है। 'तू' और 'मैं' का भाव हमें एक दूसरे से अलग किये रहता है।

'अहं' का संकोच ही हमारी ईर्ष्या का प्रधान कारण है। जब मनुष्य के 'अहं' का विस्तार होता है, तब 'मैं अकेले' के स्थान पर 'हम सबकी उन्नति' का भाव पैदा होता है। आत्मज्ञान हमें 'में अकेला' के स्थान पर 'हम सब' में विश्वास करना सिखाता है। ऐसा दृष्टिकोण धारण करने से वैरभाव दूर हो जाता है।

वैर एक अग्नि है, जो अन्दर-ही-अन्दर मनुष्य को जलाती रहती है। इससे सदा सावधान रहने का उपदेश दिया गया है।

वैर की बुनियाद मिथ्या स्वार्थ पर है। वैरी दूसरों से डरता है और अपने डर को छिपाये रहता है। जो निर्भय और सत्य निष्ठ है, वह मन में वैर की अग्नि क्यों छिपायेगा ? वह किसी से क्यों डरेगा ?

किसी का कभी बुरा मत कीजिये, बुरा न चाहिये तथा बुरा होते देखकर प्रसन्न न होइये। आपके चाह न करने से उसका बुरा नहीं हो सकता, वह तो उसके प्रारब्ध से ही होगा; पर आपका बुरा निश्चय ही हो जायगा।,

ईश्वर की इच्छा है कि उनकी इस लीला भूमि में हम सब प्रेम और परस्पर सहानुभूति पूर्वक रहें। इस समाज में कहीं भी पशुता का या असारता का भाव न हो। प्रत्येक भाग में रहने वाली सम्पूर्ण मानव जाति में परस्पर प्रेम भाव रहे। ईश्वर द्वारा बनायी हुई सब वस्तुएँ सबको बराबर मात्रा में मिलती रहें। अतः वैर भाव त्याग कर प्राणि-मात्रा के प्रति प्रेम और सहानुभूति दिखलाइये सबसे मित्रतापूर्ण सरस व्यवहार कीजिये।

२६—वर्ण, जाति, कुल, विद्या, धन आदि का अभिमान न करना

बहुत से व्यक्ति अपने को ही सर्व गुण सम्पन्न, रूप-वर्ण-कुल में सबसे उत्तम और सब प्रकार की सिद्धियों से युक्त मानकर झूठे अहंकार में डूबे रहते हैं। अहंकार से अभिमान आता है। मनुष्य अपने संकुचित दायरे में ही बन्द रहता है। इस अभिमान का परित्याग कर देना चाहिये। आध्यात्मिक दृष्टि से यह मनुष्य की गिरावट का सूचक है।

अभिमानी व्यक्ति अपने सामने दूसरों की श्रेष्ठता और उत्कृष्टता को कुछ नहीं समझता। उनकी अच्छी ग्रहण करने योग्य बातें भी नहीं सुनता। दम्भ और मिथ्या गर्व के मार्ग पर चलने से उसका पतन बड़ा ही विनाशकारी सिद्ध होता है।

रावण बड़ा विद्वान् एवं बुद्धिमान् ब्राह्मण था। उसे अपनी विद्या-बुद्धिका बड़ा गर्व था। इस अभिमान में वह इतना लिप्त हो गया कि उसे उचित-अनुचित का विवेक ही न रहा। उसने जगज्जननी माता सीता का हरण किया और अपने वंश के विनाश का कारण बना। कंस बड़ा अभिमानी राजा था। उसका अभिमान स्वयं श्रीकृष्ण ने खण्डित किया था। इसी प्रकार के अनेकों बड़े-बड़े अभिमानी राजाओं और शक्ति के मद में चूर रहने वालों का गर्व चूर्ण हुआ है। अभिमानी विद्वानों की विद्वत्ता गिर गयी है।

विद्वत्ता के साथ नम्रता, शक्ति के साथ सौजन्य, धन के साथ उदारता का महत्व है। यदि नम्रता, सौजन्य और उदारता नामक दैवी गुण न हों तो शक्ति दुराग्रह में परिणत हो जाती है।

अभिमान एक झूठा नशा है, जिसका मद मनुष्य को अंधा कर देता हैं। साधारण व्यक्ति भी अफसरी की कुर्सी पर बैठकर पद के मद में कुछ का कुछ हो जाता है। सभी वर्ग, जातियाँ, कुल, योग्यता के अनुसार अच्छे हैं। किसी को दूसरे की अपेक्षा अभिमान नहीं करना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित इन छब्बीस दैवी गुणों को धारण करने और इनका उत्तरोत्तर विकास करने से हम सच्चे अर्थों में 'मनुष्य' बन सकते हैं। जिस प्रकार फूल सवेरे के प्रकाश को लेने के लिये पंखुड़ियाँ खोल देता है, उसी प्रकार आप भी इन दैवी सम्पदाओं को अपने चरित्र में लाने के लिये और ईश्वर के देदीप्यमान प्रकाश को भीतर लाने के लिये अपनी आत्मा को खुला रखिये। देवत्व में ही मनुष्य का सर्वोच्च विकास है। ऊपर के गुणों को धारण करने से मनुष्य नित्य श्रेष्ठता की ओर बढ़ेगा, श्रेष्ठ वस्तुओं को देखेगा, श्रेष्ठ चिन्तन करेगा, विचार करेगा, और श्रेष्ठ कार्य करेगा। इस प्रकार इन दैवी सम्पदाओं के विकास से मनुष्य उच्चतम श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

लोग दुःखी; साधनहीन और संकट-ग्रस्त क्यों हैं ?

सायंकाल वृक्ष की टहनियों पर अपने घोंसले के समीप बैठे शुक और शुकी बातें कर रहे थे—

"स्वामी, एक बात बहुत परेशान कर रही है !"

"कहो, क्या शंका अन्धकार की कालिमा की तरह तुम्हारे मन की विक्षुब्ध कर रही है ?" शुक ने अपनी प्रिया से पूछा।

"आप भी क्या कहेंगे कि विश्राम के समय शुकी क्या सवाल ले बैठी, आपकी ?"

"कोई हर्ज नहीं, शुकी ! तुम तो प्रायः गहरे प्रश्न पूछा ही करती हो। कोटर में इस समय बच्चे सुख से सोये हुए हैं। प्रातः होने में कुछ

देर है। मन भी शान्त और सन्तुलित है। अपनी शंका का समाधान कर लो, शुकी !"

शुकी को कुछ पूछने का उत्साह हुआ। वह बड़ी चिन्तन शीला थी। कभी कभी जीवन और उसकी निगूढ़ गुत्थियों को अपने विचार शील पति की सहायता से सुलझाया करती थी। प्रश्न स्वत: उसकी चोंच से बह निकला।

"स्वामी ! भगवान की इस सृष्टि में लोग दु:खी क्यों हैं ? क्या इसका कारण समाज में साधनों की कमी हैं ?" शुकी ने शंका प्रस्तुत की।

"साधन तो बहुत हैं। पग-पग पर बिखरे हैं !" शुक ने जवाब दिया।

'तो फिर सम्पत्ति की कमी उनके क्षोभ का कारण होगी, स्वामी ?'

"शुकी ! तुम गलती पर हो। तनिक देखो, विपुल संख्या में लोग मामूली साधनों से उन्नति के शिखरों पर चढ़े जा रहे हैं। पाश्चात्य देश कितनी तरक्की पर है।"

"फिर क्या कारण है कि साधन और सम्पत्ति के होते हुए भी इतनी बड़ी संख्या में लोग दु:खी, गिरे हुए, असहाय और कष्टों से कुटे-पिसे हैं ?" शुकी ने पूछा—"मैं समझ नहीं पाती कि आखिर साधन और सम्पत्ति के होते हुए भी इतने अधिक लोग शोक-सन्तप्त क्यों हैं ?'

शुक गम्भीर हो उठा। वह स्वभाव से ही चिन्तनशील प्रकृति का जानवर था।

"क्यों किस सोच-विचार में डूब गये, पतिदेव ?"

"तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में एक आपबीती घटना याद हो आयी है।"

हंसकर शुकी बोली, 'आपबीती ! क्या उसमें तथ्य छिपा है ?"

"हाँ, शुकी ! वह घटना तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देगी।"

"तो फिर कहिए, क्या घटना है ?" शुकी ने आग्रह किया।

शुक अनुभव यों सुनाने लगा—

"सन्ध्या का अन्धकार पृथ्वी को अपने काले अंचल में ढक रहा था। पक्षी अपने घोंसलों में लौट रहे थे। पथिक भी रात्रि को शरण-स्थल की तलाश में वृक्षों की ओट खोज रहे थे। मैंने देखा·····?"

"क्या देखा आपने ? क्या कोई हिंस्र जन्तु आ गया था ?" शुकी ने पूछा।

"मैं इसी वृक्ष पर बैठा था। तब तक तुम मेरे साथ न थीं। मैंने देखा, एक दम्पती अपने तीन बच्चों के लिए शरण पाने की इच्छा से इसी पेड़ के नीचे आ टिके। शायद चलते-चलते थककर चकनाचूर हो रात्रि में विश्राम की इच्छा से इधर आ गये थे वे लोग।"

क्या सचमुच उन्होंने इसी वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया ?"

"हाँ, वही हुआ जिसका मुझे अनुमान था। वे सब पेड़ के नीचे (इशारा करते हुए) बस उस नुक्कड़ पर रात्रि के लिए जगह साफ करने लगे। मैं अकेला ऊब रहा था। ध्यान पूर्वक उनके कार्य-कलाप देखने लगा और उनकी बातें सुनने लगा।"

"क्या देखा आपने ? क्या उनकी बातें आपको स्मरण हैं ?"

हाँ, इतनी आतुर क्यों होती हो ! सब सुनती जाओ। बच्चे भूख से परेशान थे। उनके पास भोजन के लिए कुछ न था। फिर भी बच्चे कहने लगे, "पिताजी ! खाने को दीजिए अन्यथा प्राण निकलते हैं।' माँ तो जैसे बच्चों के मरने की बात सुनते ही अधमरी हो उठी। हाय, उसके बच्चे मर जायेंगे !

"पिता का क्या हाल था ?"

"वह उत्साही था। उत्साह स्वयं एक जीती-जागती शक्ति है। उत्साही को और भी शक्ति मिल जाती है। पिता ने उत्साह से बच्चों से कहा, 'बच्चों ! तुम जाकर जङ्गल से लकड़ियाँ बटोर लाओ। आग जलाकर भोजन पकायेंगे। बस, अभी तैयार होता है भोजन !'

'अच्छा, तो यह बात है !' बड़ा लड़का उत्साह से फूल उठा उसने कहा, 'लो चला, अभी सूखी लकड़ियाँ लाता हूं।'

"और बच्चों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा ?"

"सुनती जाओ। सभी कहता हूँ। दूसरा लड़का भी खड़ा हो गया। कहने लगा—बड़े भाई मेहनत करने जा रहे हैं, तो भला मैं क्यों कर आलस्य में बैठा रह सकता हूं। मैं भी लकड़ियाँ काटने जाता हूँ। सब मिलकर भोजन बनायेंगे। साथ-साथ खायेंगे। बड़ा आनन्द रहेगा।"

"और तीसरे का क्या हुआ ?"

"उत्साह में सक्रामक शक्ति है। एक को देखकर दूसरे का उत्साह बढ़ता है। तीसरा बोला, 'पिताजी, मेरे दो भाई मेहनत करने जायें और मैं निष्क्रिय देखता रहूं। यह मुझसे सहन नहीं होगा। मैं छोटा हूं तो क्या ! लकड़ियां इकट्ठी करने का अधिकार तो मुझे भी मिलना चाहिए।' बस, वह भी साथ चला गया।"

"ओह ! तो यह एकता ! यह पौरुष !! कमाल हो गया।"

"हाँ, शुकी ! जब एकता और पौरुष एक हो जाते हैं, तो पूर्णता की प्राप्ति होने लगती है जिससे लक्ष्य-सिद्धि होती है। नये साधनों का जन्म होता है और मुश्किलें आसान हो जाती हैं। मन को नयी-नयी दिशाओं में बढ़ने और अविष्कार करने का सुअवसर मिलता है। नव-प्रेरणा उत्पन्न होती है।"

'तो फिर उस दम्पती तथा उसके बच्चों को भोजन कैसे मिला ?"

'बिना किसी अनाज या भोजन की वस्तुओं के खाना पकाने की काल्पनिक योजना बनती सुनकर मुझे हँसी आ गयी। मैं वृक्ष की झुर-मुट में खिलखिला कर हँस पड़ा।"

"अरे ! यह अट्टहास तो उन लोगों ने भी सुन लिया होगा ?'

"हां, यही हुआ।"

"आपने उनसे क्या कहा ?"

"शुकी, मैं हँसी-मजाक की मनःस्थिति में था। उनका मजाक बनाते हुए मैंने उनसे कहा, 'मूर्खो ! तुम्हारे पास न तो कोई अन्न है, न शाक तरकारी या फल इत्यादि। क्या पकाकर खाओगे ?' वे आश्चर्य में रह गये कि उनकी दुःखद स्थिति में कौन अट्टहास कर रहा है ? मैं अहंकार में डूबा था। यौवन के उफान में उचित-अनुचित का विवेक मुझे न था। मैंने अपनी हँसी जारी रक्खी।"

'आगे क्या कहा आपने उनसे ?"

"बप, इसी के लिए तो मैं लज्जित हूं। आज भी मुझे अपने उस मजाक पर ग्लानि होती है। सोचता हूँ कि मुझे वे शब्द न कहने चाहिए थे·····!"

"कौन-से-शब्द ?"

"मैंने उनसे मजाक के स्वर में कहा—तुम्हारे पास न अन्न, न शाक, न फल, न तरकारियाँ—तो क्या अपने हाथ-पाँव पका कर खाओगे ?"

'उन पर क्या असर पड़ा आपके इस मजाक का ?'

'मजाक करना कितना घातक हो सकता है, यह मुझे तभी विदित हुआ। वे कटु शब्द मुझे बड़े मँहगे पड़े।'

'क्यों, क्या मुसीबत आ पड़ी आप पर ?'

'तब तक वे तीनों लड़के भी लकड़ी लेकर आ गये थे। मेरा मजाक उनसे सहन न हो सका।'

'उन्होंने क्या कहा ?'

'क्रुद्ध स्वर में वे तीनों मेरी ओर देखकर घूरते हुए बोले—अहंकारी दुष्ट पक्षी ! हम अपने हाथ-पांव नहीं, तुझे ही पकाकर खायेंगे। उनमें बड़ी एकता थी। साथ में पौरुष था। सब मिलजुल कर मुझे मारने के लिए उपक्रम करने लगे। ईंट, पत्थर, लकड़ियाँ एकत्र कर लीं। उनकी ऐक्य भावना से मुझे विश्वास हो गया कि इनका निश्चय

कार्यान्वित होकर रहेगा और वे मुझे जीवित न छोड़ेंगे । मैं उनके ऐक्य और पौरुष के समक्ष झुक गया । किसी भी मूल्य पर अपने प्राण बचाने की सोचने लगा ।'

'फिर आपके प्राण क्यों कर बचे ?'

'सहमें-से स्वर में मैंने उन्हें सुझाव दिया कि तुम लोग मुझे मत खाना । मुझे प्राण-दान दे दो, इसके बदले में मैं तुम्हें एक पुराना छिपा हुआ खजाना बताता हूँ । तुम उसे खोद लो । वह तुम्हारी कई पीढ़ियों तक भोजन देने के लिए यथेष्ट है । यह कह कर मैंने उन्हें गन्धमादन नामक पर्वत पर ले जाकर छिपे हुए रत्नों को दिखाया, जिसे पाकर वे समृद्धिशाली हुए और खुशी-खुशी अपने घर चले गये ।'

'ओफ ! यह तो बड़ा अद्‌भुत अनुभव है ! आपको बड़ी मुसीबत में से गुजरना पड़ा ! लेकिन·····इससे निष्कर्ष क्या निकला ? यह समझ में नहीं आया ।"

"निष्कर्ष अभी कहां शुकी ! अभी तो मेरा अनुभव आधा ही सुना है तुमने ।"

'आगे क्या हुआ ?'

"वे लोग लौट कर गये, तो उनकी समृद्धि और धनधान्य से परिपूर्ण अच्छी आर्थिक स्थिति देखकर पड़ोसियों को आश्चर्य हुआ ! अरे, ये लोग कैसे इतनी जल्दी अमीर हो गये ।' वे स्पष्टवादी थे, उन्होंने सारी गुप्त बातें और अपने अनुभव स्पष्ट बता दिये । दूसरों को भी अमीर बनने की इच्छा हो उठी ।"

"बड़ा धोखा दिया, उन्होंने ! औरों को भी धनवान बनने की इच्छा सहज स्वाभाविक थी । उससे उलझनें उत्पन्न हुई होंगी ?"

"सो तो स्वाभाविक ही था । दूसरे दिन ही मैंने देखा कि इसी वृक्ष के नीचे वैसे ही दम्पती अपने बच्चों सहित आकर रात्रि व्यतीत करने की योजना बनाने लगे ।"

"सारा अभिनय पूर्ववत् ही हुआ। वे पहले से ही अपने बच्चों को सिखा पढ़ा कर लाये थे। उसी प्रकार बनावटी स्वर में उनके बच्चों ने भी भोजन मांगा। पिता उसी अन्दाज में बोला—जङ्गल से सूखी लकड़ियाँ बटोर लाओ। अभी भोजन बनाते हैं। लड़के आपस में झगड़ने लगे। उनमें कोई भी काम करने को तैयार न था। सभी आनाकानी कर रहे थे। वे एक दूसरे से 'तुम जाओ, तुम जाओ' कह कर आज्ञायें मात्र दे रहे थे। कोई स्वयं जाने को प्रस्तुत न था। मुझे उनकी आपाधापी पर बड़ा क्षोभ हुआ। उन्हें समझाने के विचार से मेरे मुँह से निकला—बच्चो ! झगड़ो मत। भला जङ्गल से लकड़ियाँ लाकर क्या करोगे ? अन्न, शाक, तरकारी अथवा फल—तुम्हारे पास पकाने को तो कुछ है ही नहीं ! लकड़ियाँ ले भी आये तो क्या पका कर खाओगे ?'

"उन्होंने क्या उत्तर दिया ?"

"उत्तर वैसा ही खोखला था। उन्होंने पहले दम्पती जैसा ही अभिनय किया। बोले—तुझे ही भूनकर खायेंगे। मुझे उनकी आन्तरिक कमजोरी का पता था। मैं जानता हूं जहाँ एक्यभाव नहीं है, वहाँ पौरुष भी नहीं है। जब व्यक्ति साथ-साथ एकता की डोर में बँधकर कार्य करते हैं, तो उनमें शक्ति उत्पन्न होती है। जहाँ छोटी-छोटी बातों पर तकरार होती है, जहाँ जरा-जरा से कारणों पर विरोधात्मक आन्दोलन खड़े हो जाते हैं, जहाँ हर आदमी बात को टालकर दूसरे पर थोपने का प्रयत्न करता है, वहाँ कोई भी रचनात्मक काम नहीं हो सकता। उन्नति और प्रगति का मार्ग रचनात्मक प्रवृत्तियों में सन्निहित है। जो हर समस्या को रचनात्मक ढङ्ग से सोचता है वही कुछ कर गुजरता है। उनका खोखलापन देख कर मैं हंसा और बोला—मुझे खाने वाले तो पहले आये थे। वे धन दौलत भी ले गये हैं। तुम जैसे खोखले लोग, जो कोरी फालतू बातें बनाते और कुछ भी रचनात्मक कार्य नहीं करते, जैसे खाली हाथ आये थे, वैसे ही खाली हाथ जाओगे। उन्होंने मुझे

बहुत भय दिखाया, पर ऐक्य और पौरुष का अभाव देखकर मैं तनिक भी भयभीत न हुआ। अपनी गीदड़-भभकी का कोई प्रभाव न देखकर वे फालतू बातें करने वाले आलसी लोग खाली हाथ लौट गये।"

शुकी हँसने लगी।

"अरी, हँसती क्यों है ?"

"निष्कर्ष समझ में नहीं आया अभी तक।"

"कहो, तो आशय स्पष्ट करूँ ?"

"हाँ, उसमें शायद मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जाये।"

"शुकी ! तात्पर्य यह है कि जिनके जीवन में ऐक्य और क्रियाशीलता होती है, वे ही सफल होते हैं। एकता के साथ जब पौरुष मिल जाता है, तो मनुष्य में गुप्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है—

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।

अर्थात् जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को ज्ञान और कर्म की ओर प्रेरित करता है, उसी प्रकार हे परमात्मा ! तू भी हमें क्रियाशील और ज्ञानवान बना ताकि हम जीवन लक्ष्य पूरा कर सकें।'

"समझ गयी अपने प्रश्न का उत्तर ! जहाँ जीवन में एकता, पौरुष और क्रियाशीलता होती हैं, वहीं लक्ष्मी का निवास होता है।" शुकी सन्तुष्ट हो गयी।

प्रभात की रश्मियाँ क्षितिज पर झूलने लगी थीं। बच्चे रात भर की नींद लेकर धीरे-धीरे चहचहाने लगे थे।

धरती के देवता

[मनुष्य का देवत्व प्रकट करने वाली सच्ची घटनायें]

एक पौण्ड रक्तदान दे दिया

बुन्देलखण्ड में नौगाँव !

सिविल हॉस्पिटल में सर्जरी-विभाग ! कम्पाउन्डर और नर्सें बड़ी अस्त-व्यस्त हैं। आज एक खतरनाक आपरेशन होने वाला है।

'हाय·····हाय ! प्राण निकले ! बचाओ, मेरी जान बचाओ। मैं मरी !!'

एक गर्भवती स्त्री के समीप भारी चिन्ता में डूबी कई नर्सें खड़ी हैं। रोगिणी के पेट में असह्य पीड़ा हो रही है। यह गर्भवती ग्राम नागरा से प्रसव कराने आयी है। उस गाँव की औरत का पति तथा अन्य सम्बन्धी भयातुर बाहर बैठे हुए क्षण-क्षण बच्चे के जन्म होने का समाचार जानने को उत्सुक हैं। उन सबके चेहरों पर भावी आशंका के काले चिन्ह उभरे हुए हैं।

डाक्टर श्री रुद्रदत्त खरे, असिस्टेंट सर्जन, रोगिणी का परीक्षण कर रहे हैं।

'अरे ! यह तो बड़ा सीरियस केस है—वेरी क्रिटिकल।'

'क्यों क्या हुआ ? अब रोगिणी का कैसा हाल है ?' बाहरवालों ने पूछा।

डाक्टर खरे भय से चुप हैं। उनसे कुछ कहते नहीं बन रहा है।

'कहिये डाक्टर साहब, हम रोगिणी को बचाने के लिए सब कुछ खर्च करने को तैयार है।' जेब से नोटों की गड्डी निकालता हुआ पति बोला।

'महज रुपयों से काम नहीं चलेगा। इस कमजोर औरत का गर्भा-

शय फट गया है। बहुत सा रक्त बह गया है और कमजोरी आ रही है। तुरन्त इसे इसके खून से मिलते हुए किसी दूसरे व्यक्ति के खून की जरूरत है। एक पौण्ड खून मिल जाने पर इस बहिन के प्राणों की रक्षा हो सकती है।'

डाक्टर यह कहकर उपस्थित व्यक्तियों के मुँह की ओर देखने लगे।

पर खून कौन दे ?

सब रिश्तेदार चुप ! परिस्थिति विकट है। सब गुमसुम बठे हैं। इनके मुँह में जिह्वा नहीं है क्या ?

डाक्टर फिर बोले—

'हमें आपके रुपये नहीं चाहिए। रोगिणी के रक्त से मिलने वाला रक्त चाहिए। यह वह चीज है, जो रुपयों से नहीं खरीदी जा सकती। अपने रुपये जेब के हवाले कीजिए और एक-एक करके आप सब अपने खून का परीक्षण कराइये। परीक्षण में इसके रक्त से जिसका रक्त मिलेगा, उसी का रक्त रोगिणी के शरीर में चढ़ा देंगे, उसकी ताकत से इसके प्राण निश्चित रूप से बच जायेंगे। रक्त की कमी के कारण रोगी में बहुत कमजोरी आ गयी है। बिना खून चढ़ाये, इसका बचना कठिन है। वेरी सीरियस केस। लाइफ इन डेन्जर !'

डाक्टर की बाते सुनकर रिश्तेदारों में कानाफूसी शुरू हो गयी।

'तू दे न अपना खून ! तू तो इसका पति है।'

'न भाई, मुझे तो डर लगता है। खून देकर मैं कमजोर और बीमार हो जाऊंगा। मुझसे पैसा जितना चाहो, खर्च करालो। और जो कुछ कहो, वह कर दूं, पर खून निकलवा कर मरना मंजूर नहीं। नहीं, मैं अपना खून न दे सकूंगा।' मौत से डरता हुआ पति बोला।

'तो और कोई इसे खून दो। देर न करो, आगे आओ ! रोगिणी का जीवन खतरे में है।'

अब बातचीत बन्द हो गयी। सब रिश्तेदार चुप हो गये। मौत-सा

सन्नाटा छा गया। सब रिश्तेदार एकाएक चुप हो गये। खून देने के लिये कोई भी तैयार न हुआ।

अब क्या हो ?

क्या इस गांव वाली गर्भिणी को एक पौण्ड खून न मिलने के कारण मौत के हवाले कर दिया जाय ?

क्या किसी में दया, परोपकार, त्याग और बलिदान नहीं है ? इतने में डाक्टर की अन्तरात्मा जाग उठी।

उसके अन्दर से बैठा हुआ परमात्मा बोल उठा, 'नहीं, इस गरीबनी के प्राण बचने चाहिए। बेचारी अभी युवती है। इसने जीवन में देखा ही क्या है। यदि कोई कुछ सहायता नहीं करता, तो डाक्टर तू ही कोई उपाय कर जिससे इसके प्राण बचें।'

कुछ सोचकर डाक्टर साहब रक्त परीक्षण विभाग में गये। उन्होंने अपने देवत्व की अवहेलना न की। वे सोचने लगे, परोपकार के अवसर जीवन में कब-कब आते हैं। ईश्वर मेरे धर्म की परीक्षा ले रहा है। मैं इसमें खरा उतरूंगा। अपना रक्त देकर यदि मैं एक प्राणी की रक्षा कर सकता हूं, तो क्यों पीछे हटूं। सबसे बड़ा धर्म वह है जो दूसरे के काम आता है।'

संयोग से उनका रक्त रोगिणी के रक्त से मेल खा गया। उन्होंने कम्पाउण्डर से अपना रक्त निकालने की आज्ञा दे दी। रक्त निकाला गया और रोगिणी के चढ़ाया गया। ईश्वर की कृपा और डाक्टर के रक्त-दान से उस रोगिणी की प्राण रक्षा हो गयी।

उधर बाहर बैठे सम्बन्धी रोगिणी के मरने की सूचना की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। वे शव को फूंकने की योजनाएं बना रहे थे। न खून मिलेगा, न वह बचेगी। इतने में कम्पाउन्डर बाहर निकला।

उन्होंने पूछा, 'तबियत कैसी है ? डाक्टर खरे बाहर नहीं निकले हैं ? क्या आपरेशन हो चुका है ?'

कम्पाउन्डर ने व्यग्य मिश्रित स्वर में कहा, 'तुम हृदय हीनो ने जब अपना रक्त देने से इन्कार कर दिया, तो खुद उदारमना डाक्टर खरे ने अपना एक पौण्ड रक्त रोगिणी के निर्बल शरीर में चढ़वाकर उसकी प्राण रक्षा की है। उनका रक्त न चढ़ाया जाता तो वह निश्चय ही मर जाती, किन्तु अब वह खतरे से दूर है····।

रिश्तेदार आश्चर्य से यह सब सुन रहे थे। अब उन्हें अपनी हृदय हीनता और स्वार्थ पर बड़ी लज्जा आ रही थी। डाक्टर रुद्रदत्त अपने एक पौण्ड खून का मूल्य कुछ भी ले सकते थे। जब वे ग्रामीण उन्हें चार सौ रुपये देने लगे, तो वे बोले—

'यह रक्तदान मैंने पैसे के लोभ से नहीं किया है। जन कल्याण के इस देवकार्य को पैसा लेकर मैं अपने पेशे को कलङ्कित नहीं करना चाहता। मैं उस जीवन को बेहतर समझता हूं, जिसमें बहुमूल्य शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग परार्थ होता है। परमार्थ-वृत्तियों को विकसित करने से मनुष्य देवत्व की ओर अग्रसर होता है और पृथ्वी पर स्वर्ग का वातावरण उपस्थित करता है।'

डाक्टर रुद्रदत्त का त्याग और बलिदान मानवता के लिये गर्व का विषय है। युग-युग तक वह स्मरणीय रहेगा। देवत्व ही मनुष्य का गौरव है।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धया भगस्य मूर्धनि वचसा वदया मसि॥

(ऋग्वेद १०।१५१।९)

अर्थात् श्रद्धा पूर्वक किये गये लोकोपकारी कर्म ही ध्येय सिद्धि की सामर्थ्य रखते हैं। अतः मनुष्य को परोपकार की प्रवृत्ति ही रखनी चाहिए।

बलिदानी सुभाष को रक्षा-पदक का सम्मान

८ नवम्बर, १९६२

नई दिल्ली ! यमुना का कुदसिया घाट । स्नान की भीड़ ।

सुबह के समय प्राय: धार्मिक प्रवृत्ति की हिन्दू महिलाएँ यहां प्रात: स्नान के लिये प्रतिदिन ही आती रहती हैं। इस स्थान का धार्मिक महत्व है । हिन्दू धर्म प्राण नारियाँ तो बड़े तड़के ही स्नान करने चल पड़ती हैं और प्रभात कालीन अँधेरे की भी परवा नहीं करती है । कैसा अटल है उनका धार्मिक विश्वास ।

प्रात: वेला में स्नान चल रहा है । यमुना-घाट पर धर्म प्राण पुरुष-स्त्रियों की उथल-पुथल 'जय यमुना मैया', 'हर हर महादेव' के उन्मत्त स्वर सुन पड़ रहे हैं । जल में नहाने की खलबली की मिश्रित ध्वनियाँ ! सब 'सी-सी' करते धर्म का आनन्द ले रहे हैं ।

दरियागज के कमर्शल हायर सैकेंडरी स्कूल का एक १६ वर्षीय छात्र सुभाष चन्द्र अपने साथियों सहित प्राय: सुबह टहलने उधर से ही निकला करता है । जैसे ही ये लड़के कुदसिया घाट के समीप टहलते-टहलते निकलते हैं, एकाएक इन्हें स्नान करने वालों में एक भय-मिश्रित शोर सुन पड़ता है । लगता है जैसे कोई नहाने वाला डूबने की संकटमय स्थिति में है—

"अरे ! कोई दौड़ो, बचाओं' कुछ नहाती हुई स्त्रियाँ यमुना जी के भँवर में फँस गयी हैं । बेचारी डूब जाँयेंगी.....हाय ! हाय ! वे बड़े खतरे में हैं । कोई साहसी आदमी उनकी फौरन मदद करो । भागो, प्राण रक्षा करो । वे औरतें तैरना भी नहीं जानतीं कि भँवर से निकल आयें ....सहायता....फौरन मदद चाहिये....हाय ! हाय ! वे डूब रही हैं ।'

आवाजों में करुणा और वेदना के साथ स्थिति की भयंकरता स्पष्ट हो रही थी ।

ओफ ! तो क्या क्रूर मौत के हाथों अबोध स्त्रियों का जीवन-कुसुम मसल कर रख दिया जायेगा ।

क्या नियति का निरंकुश चक्र नारियों की विवशता और निर्बलता को क्षमा न करेगा ।

दुनिया के जगने से पूर्व ही क्या इनके जीवन-सूर्य अस्त हो जायँगे ?

क्या किसी साहसी की सबल भुजाएँ इन डूबती हुई अबलाओं को सहारा न देंगी ? क्या कोई पुरुषार्थी हथेली पर सिर धरकर यमुना की अगम गहराइयों से इन्हें न निकालेगा ?

विद्यार्थी सुभाष चन्द्र घाट पर से आती हुई करुण पुकार को अन-सुनी न कर सका । औरतों को डूबने से बचाने के लिये वह आगे-आगे भागा, तो उसके साथियों के पाँवों में भी उत्साह जगा । वे सब जल्दी-जल्दी दौड़ते हुए घाट पर पहुंचे ।

देखा, वहाँ भगदड़ मची है । भयंकर शोरगुल और भाग दौड़ हो रही है । कुछ स्त्रियाँ और भावुक पुरुष सहायता का उपक्रम कर रहे हैं, पर भँवर में तैरकर स्त्रियों को बचा लाने की हिम्मत किसी की नहीं पड़ रही है । सभी 'कोई कूदो । कोई तैरो ! भागकर जल्दी से तैराकों को बुलाओ ।' कह रहें हैं । कहने वाली अनेक जिह्वाएँ हैं, करने वाला हाथ एक भी नहीं ।

तो क्या भँवर में फँसी ये दुखी नारियाँ सदा सदाके लिये, सूर्य उगने से पूर्व मौत की काली-काली गोद में सो जायँगी ?

बालक सुभाष चन्द्र की आत्मा ने उसे झकझोरा—

'सुभाष, तेरे अन्दर देवत्व सो रहा है । इस जीवन का सबसे उत्तम उपयोग यह है कि वह मुसीबत में फँसे प्राणियों की रक्षा में काम आये । जीवन का सबसे बड़ा लाभ परमार्थ है । दूसरों की सेवा, सबसे सहयोग, विपत्ति में फँसे प्राणियों की सहायता, हर सम्भव तरीके से परोपकार से ही मनुष्य देवता बनता है । इस जीवन में शान्ति पाता है, यशस्वी बनता है लोक-परलोक बनाता हैं । ऐसा शानदार अवसर

हाथ से मत जाने दे। कुछ धर्म का काम कर बैठ, इन डूबती हुई औरतों को बचाकर जीवन धन्य कर ले।'

यह सोचते-विचारते बालक सुभाष जूते उतारकर कपड़ों सहित 'धम्म' से यमुना की लहरों में कूद पड़ा।

'अरे! वह लड़का कूदा। वह सहायता के लिए चला। यह लो, वह तो भँवर में फँसी स्त्रियों तक पहुँच चुका है। 'वह उन्हें किनारे की ओर घसीट रहा है।'

'यह लो वह उन तीनों को खींच रहा है। अब वह लौट रहा है। स्त्रियाँ खिंची हुई किनारे की ओर आती हुई दिखायी दे रही हैं।'

आखिर वीर लड़के ने उन डूबती हुई स्त्रियों को बचा ही लिया। उन घबरायी हुई स्त्रियों के पाँव पानी में टिक गये। वे जल्दी-जल्दी पानी से निकलीं। मुंह पर हवाइयाँ छायी थीं।

धन्य है वह वीर सुभाष जिसने यमुना की भंवर से इन तीनों के प्राण बचाये हैं। कहाँ है वह? हम उसकी पीठ थपथपायें। उसके वीरोचित कार्य के लिए उसे शाबाशी दें। उसे सिरमाथे पर रक्खें। वह बालक मानवता का आभूषण है।

पर यह क्या?

वह तो नदी से बाहर आता नहीं दिखायी दे रहा है। किधर है सुभाष? पानी में नजरें गड़ी हैं, उस परमार्थी को खोजती हुई।

सब नेत्र उधर ही लगे हैं। खतरे से बची नारियाँ भय और आशङ्का में डूबी विस्फारित नेत्रों से सुभाष के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि उसे कृतज्ञता में क्या-क्या कहेंगी? अपने प्राण बचाने वाले उस साहसी युवक को किन-किन शब्दों में धन्यवाद देंगी।

पर हाय····सुभाष जल से न निकल सका। उत्सुक नेत्र उधर अटके के अटके ही रह गये। निराश····और गरम आँसुओं से भीगे-भीगे।

उस साहसी लड़के ने भँवर से उन स्त्रियों को तो बचा लिया था,

पर स्वयं को यमुना की तेज लहरों से वह बचा नहीं पाया था। क्रूर लहरों ने उसे अपनी ठन्डी गोद में सुला लिया था। मानवता का एक जगमगाता हीरा सहसा खो गया था, एक देदीप्यमान ज्योति मानो अपना दैवी प्रकाश दिखाकर एकाएक विलुप्त हो गयी थी।

वीर बलिदानी कहानी उसके पिता श्रीं आर. आर. खुराना को दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने अपने निवास स्थान पर आयोजित एक समारोह में सुनायी। यह सब सुनकर पिता का मस्तक गर्व से उन्नत हो उठा। साहसी सुभाष को प्रथम श्रेणी का रक्षा पदक (मरणोत्तर) प्रदान किया गया।

जीवन वही धार्मिक है, जो दूसरों के काम आये।

ईश्वर ने मनुष्य में वे सब दिव्य गुण बीज रूप में रक्खे हैं, जो स्वयं उनमें विद्यमान हैं। हाड़-मांस के ये चलते-फिरते आदमी कहलाने वाले जीव परमात्मा के ही छोटे रूप हैं।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजुर्वेद ३१।१)

स्मरण रखिये, जो परमात्मा असख्य सिर, आँख और पाँव वाला है, जो पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्म भूतों से युक्त सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, (वह मनुष्य के हृदय में भी विराजमान है। वह भाँति-भाँति से मनुष्य के सत्कर्मों के रूप में प्रकट होता रहता है और हममें अपने देवी स्वरूप का प्रत्यक्ष प्रमाण देता रहता है।) उस नित्य शुद्ध-बुद्ध और मुक्त स्वभाव परमात्मा की ही हम उपासना करें। इसी से हमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

हममें देवत्व प्रचुरता से भरा पड़ा है तथा विभिन्न रूपों में वह प्रकट होता रहता है। त्याग, बलिदान, सेवा, सहयोग, परस्पर सद्भाव-पर ही परमात्मा का सारा कारोबार चल रहा है।

शीला हतप्रभ हो उठी

खड्ड ! खड्ड ! खड्ड !

खटपट की ध्वनि करती हुई बस एकाएक रुकी। उसमें आज भयानक भीड़ थी। बड़ी कठिनता से आज बस में खड़े-खड़े ही शीला ने यात्रा की थी। भगदड़ तथा जल्दबाजी में उतरने वाले मुसाफिर शिष्टता की परवा किये बिना जल्दी-जल्दी बस से उतर रहे थे।

नयी सवारियाँ बेताबी से बस में फिर चढ़ने लगीं। गुत्थमगुत्था हुई। थोड़ी देर में बस स्टैन्ड पर आकाश में घिरे बादलों की तरह भीड़ हो गयी, फिर बस के चलते ही लोग बाजार में तितर-बितर हो गये।

मिले और बिछुड़े ! यही संसार का चक्र है। कुछ नये यात्री बस में चढ़े, मानो पंख लगाकर आकाश में उड़े। बस, जैसे पङ्खों वाली चिड़िया की भाँति फुर्र हो गयी।

इन उतरने वाले यात्रियों में लड़के भी हैं, बड़ी उम्र के अधेड़ भी और चींटी की तरह नोन-तेल, लकड़ी के सांसारिक चक्र में फँसे गृहस्थी भी। स्त्रियाँ तथा पुरुष सभी तो हैं।

शीला बस में से उतर कर जल्दी-जल्दी अपनी चुन्नी सँभाल रही थी। उसने अपनी पुस्तकों को सभाला। फिर अपने लम्बे कमीज के गले में लगे फाउन्टेन पेन को टटोला। फिर गले पर हाथ गया। उसने अपने सोने के कण्ठहार का टटोला।

अरे ! यह क्या ? उसका सोने का नेकलेस कहाँ है ? गला खाली है।

उफ् ! गजब हो गया। शीला का नेकलेस ····गायब ···था···· ।

नेकलेस खो जाने से बेचारी शीला की तो वह हालत हुई कि काटो तो खून नहीं। नुकसान के कारण उसका चेहरा विषाद, भय और आवेश में फक् पड़ गया। वह गम्भीर उलझन में पड़ गयी।

'हे परमेश्वर ! मुझसे बड़ा भारी नुकसान हो गया। किसी पाकेट मार ने कण्ठहार काट लिया।

उसने मानसिक व्यथा से माथा पकड़ लिया। नारी सुलभ भावुकता ने उसे एकाएक द्रवित कर दिया। पछताती और कलपती हुई वह अविचलित पत्थर की जड़ मूर्ति की तरह खड़ी थी, निष्प्राण···· निश्चल····गुमसुम।

बेचारी क्या करे अब ?

शीला के सामने अपने नेकलेस के खो जाने की गम्भीर समस्या आ गयी, हिमालय पर्वत के सदृश। न जाने आज की भीषण मँहगाई में कैसे उसके गरीब माता-पिता ने वह हार बनवाया था। कितने संयम-द्वारा पैसे इकट्ठे किये थे। आजकल दिन-रात मेहनत-मजदूरी कर न जाने क्या कैसे खाकर मनुष्य अपना और अपने परिवार का उदर पोषण करता है। किसी प्रकार इज्जत बचाये रहता है। एकाएक नेकलेस में लगी पूँजी के नुकसान ने शीला को एकदम जड़ और निश्चेष्ट-सा बना दिया। वह पगली सी हाकर इधर-उधर विस्फरित नेत्रों से देखने लगी। चिन्तन की गहराई में डूब कर वह सोच रही थी कि अब क्या करे ? किससे भारी नुकसान की बात कहे ? आज के सन्देहशील युग में किसी युवती का बिना मतलब किसी पर पुरुष से बातें करना भी तो खतरे से खाली नहीं है।

एक भले मानुष अधेड़ सज्जन ने हतप्रभ दुःखी लड़की को ध्यान से देखकर अनुमान लगाया कि अवश्य दाल में कुछ काला दीखता है। पूछताछ कर अबला की सहायता करनी चाहिए।

वे सज्जन समीप आये। उत्साह भरे स्वर में बोले—'नन्हीं बहिन ! बस से उतर कर चकित विस्मित खड़ी-की-खड़ी कैसे रह गयी ? क्या तुम्हारा कुछ खो गया है ?'

शीला ने सन्देह और भयातुर करुण स्वर में नुकसान की बात कह

सुनायी। या तो किसी पाकेट मार ने सोने का नेकलेस उड़ा लिया, अथवा कुण्डी टूट जाने से नेकलेस बस में ही गिर पड़ा।

दीर्घ श्वास छोड़कर वह बोली—'मुसीबत यह है कि उस बस का नम्बर तक मुझे याद नहीं है जो पूछताछ करती।'

उसकी जीभ लडखडा गयी। शब्द रुक गये।

वे सज्जन बोले—'नम्बर तो मुझे याद है। मैं भी तो तुम्हारे साथ उसी बस में से उतरा हूं। तुम्हें नम्बर चाहिए तो मैं बता सकता हूं।'

'वह क्या है ? कृपाकर मुझे बताइये' शीला ने उत्सुकता से पूछा।

'वह तो ८१ नम्बर की बस थी।' वे बोले—

'शायद उसका कन्डक्टर हार के विषय में कुछ बता सके।'

'हाँ ईमानदारी और सज्जनता के आधार पर ही यह समाज उन्नति करता है। परस्पर विश्वास पर ही दुनिया का सारा कारोबार चल रहा है। मानवीय प्रगति और शान्ति का यही आधार है। जब ईमानदारी की नींव हिल जाती है, तब संसार के विनाश का खतरा उत्पन्न हो जाता है। टेलीफोन कर हमें अगले बस स्टैन्ड पर उस बस के ड्राइवर और कन्डक्टर को सूचना देनी चाहिए।'

दोनों व्यक्ति समीप की दुकानपर टेलीफोन करने लगे।

पूछने पर पता चला कि वह बस उस स्टाप पर भरी हुई होने के कारण रुकी ही नहीं थी। अब फिर उलझन सामने आयी। समय बीता जा रहा था। जितनी देरी, उतना ही बस का मिलना कठिन। उन्होंने बसों के हेड आफिस में टेलीफोन किया।

वहाँ भी कोई सज्जन ही थे। उन्होने उत्तर दिया 'यदि नेकलेस बस में मिला, तो ध्यान रक्खा जायगा। पर खोई हुई वस्तु की प्राप्ति की कोई गारन्टी नहीं दी जा सकती।'

जवाब सुनकर शीला चिन्तित और व्यग्र हो उठी। उसके छोटे से हृदय ने कभी इतनी बड़ी आर्थिक हानि की बात न सोची थी। वह

दुःख से बेहाल थी। उसकी जिज्ञासा और चिन्ता का छिपना कठिन हो गया।

वह जल्दी-जल्दी हड़बड़ा कर अपने घर पहुँची और रात होते-होते हैरान-सी अपने पिताजी के साथ बसों के हेड आफिस में पहुँची। वह और उसके पिता—दोनों ही उद्विग्न और चिन्तित अवस्था में थे। रात होती जा रही थी। सब बसें वापिस पहुंचकर खड़ी हो चुकी थीं। डिपो बसों से भरा था और कर्मचारी लोग घर जाने की तैयारी में थे।

'आप गुमशुदा माल के दफ्तर में जाकर नेकलेस के विषय में पूछ-ताछ कीजिए।'

'वह कहाँ है ? कृपाकर हमें वहाँ तक पहुँचा दीजिए।'

बस के एक कर्मचारी को दया आ गई। वह उन्हें लेकर डीपो के आखिरी किनारे पर स्थित कमरे में पहुंचा, 'यह रहा गुमशुदा विभाग। आप यहाँ पूछताछ कर लीजिए। ईमानदारी और मेहनत की कमाई व्यर्थ नहीं जाती।'

'क्या बात है ? आप दोनों हड़बड़ाये-से क्यों है ? इन छोटी बहिनजी की आँखें सूजी हुई क्यों हैं ?' कर्मचारी ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कई सवाल पूछ डाले, क्या कोई चीज खो गयी है इनकी ?'

'जी हाँ' शीला मर्राये हुए करुण स्वर में बोली, 'मैं आज ८१ नम्बर की बस से यात्रा कर रही थी। मेरा सोने का नेकलेस गले से गायब है। सम्भव है वह किसी को बस में पड़ा मिला हो ?'

वह उत्सुकता पूर्वक अपलक कर्मचारी के मुंह से आशाजनक उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। मन में सोच रही थी। धर्म की कमाई व्यर्थ नहीं जाती।

'किस डिजाइन का था आपका नेकलेस ?'

शीला ने टूटी-फूटी भाषा में नेकलेस के डिजाइन को समझाने की

कोशिश की, पर विक्षोभ में उसका पूरा वर्णन न कर पायी। उसे अपने नेकलेस का ब्यौरा याद भी तो न रह सका था।

'अनुमानतः वह कितने तोले का होगा ?'

पिता बीच में ही बोला, 'मैं बताता हूं। इस लड़की को क्या पता कितनी मेहनत और ईमानदारी की कमाई से वह बना था। वह साढ़े तीन तोले का असली सोने का था, फूल-पत्ती के डिजाइन वाला। फूलों में लाल और सफेद नगीने जड़े हुए हैं, नया-सा लगता है।'

वे निर्णय की उसी प्रकार उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे, जैसे कोई मृत्यु दण्ड का अपराधी अपने बचने का निर्णय सुनने की आशा किया करता है। इन आशा प्रद सपनों की बड़ी विचित्र-सी तस्वीर होती है। दोनों के मन में आशा निराशा की खलबली मची हुई थी। कच्चे धागे से आशा बँधी थी।

'आपका नेकलेस हमारे यहाँ जमा हुआ है अभी कुछ देर पहले ही। उस बस के कंडक्टर ने हमारे दफ्तर में जमा कर दिया है।

'ओफ् ! तो मेरा गुमशुदा नेकलेस मिल गया !' अहह ! शीला आनन्द से नाच उठी।

इस अप्रत्याशित समाचार को सुनकर शीला और उसके पिता में तो जैसे नया जीवन ही आ गया। लड़की ने शान्ति और सन्तोष की दीर्घ निःश्वास छोड़ी। वृद्ध पिता भी हर्ष से चौंक उठा। अर्द्ध-निमिलित पलकों को वह बार-बार खोलने लगा, आश्चर्य ! अन्धकार में जैसे प्रकाश की एक स्वर्णिम रेखा खिंच गयी हो !

खोया हुआ सोने का नेकलेस पाकर वे आनन्द से विह्वल हो उठे ! 'कैसे हार मिला ? वह आपको किसने दिया ?'

वे उत्सुकता से पूछने लगे। स्वर में आशा और उल्लास था। मन में शान्ति। अधिकारी बोला, 'आप तनिक सन्तुलित होइये। अपने खोये हुए नेकलेस के सम्बन्ध में हमें और जानकारी दीजिए। तभी वह आपको मिल सकता है।'

हैरान होकर शीला के पिता नेकलेस के बारे में और जानकारी देने लगे। फिर उनसे साक्षी लाने को कहा गया। सैकड़ों मुसीबतों के बाद वह नेकलेस उन्हें मिला। तब उन्होंने शान्ति की साँस ली।

'मैं उन ईमानदार कन्डक्टर महोदय का नाम जानना चाहता हूँ।'

'ये दिल्ली वेस्ट के कन्डक्टर श्री परशुराम अम्बाजी सावन्त थे। इन्हीं की नेकनीयती की वजह से यह नेकलेस आपको मिल रहा है। मामूली कच्ची नीयत का आदमी उसे हजम कर जाता। इन्होंने उसे सँभाला और गुमशुदा माल के दफ्तर में जमा करा दिया। किसी की चीज लेना, दूसरे को बताना, मुफ्त में हड़प लेना भी तो अधर्म है। चोरी है। हमारे यहाँ इनकी ईमानदारी के कई किस्से हैं। इन्हें धरती के छोटे-मोटे देवता ही समझो।'

दोनों कन्डक्टर साहब की ईमानदारी की प्रशंसा करते हुए अपना नेकलेस लेकर खुशी २ बाहर निकले। वे मन में कहते जाते थे कि धर्म वही है, जिसका हम प्रतिदिन के व्यवहार में उपयोग करते हैं। जो धार्मिक पुस्तकों में पढ़े हुए सिद्धान्त हैं, वे चाहे कितने ही अच्छे हों, बिना उपयोग के व्यर्थ ही हैं।

हमारे यहाँ कहा भी है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
(यजु ४०। १)

स्मरण रखिए, इस संसार में सर्वत्र परमात्मा की सत्ता समायी हुई है। यह जानकर जो ईमानदार आदमी दूसरों के धन का अपहरण नहीं करता, वह धर्मात्मा पुरुष इस लोक में सुख और परलोक में मोक्ष प्राप्त करता है।

मनुष्य की ईमानदारी भी देवत्व का ही एक अङ्ग है। ईश्वर ईमानदार के घर में निवास करता है। जो आदमी अपने सामाजिक लेन-देन में ईमान पर कायम रहते हैं और अपना कर्तव्य पूरा करते हैं, वे स्वर्ग

में रहने वाले देवताओं से किसी हालत में कम नहीं हैं।

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि॥

(अथर्ववेद ७।११५।१)

अर्थात् हम पाप की कमायी न करेंगे, न अपने पास ही रक्खेंगे। उसे सदैव अपने शत्रुओं के पास ही रहने देंगे; क्यों कि पाप की कमायी से उनका सर्वनाश होना निश्चित ही है।

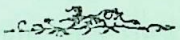

मानवता की सेवा ईश्वर की सच्ची पूजा

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्निन्द्र वृषणं सचा सुते मखायं कृणवामहै॥

(ऋग्वेद ८।६१।११)

अर्थात् अन्तःकरण यदि मलिन और अपवित्र बना रहे, तो परमात्मा की उपासना भी फलवती न होगी। अतः ईश्वर की उपासना निष्पाप हृदय से करें।

अन्तरात्मा का हलकापन

बहराइच में एक विषादमय घर। वातावरण नैराश्य से परिपूर्ण विलाप करती हुई 'हाय! वे जाते रहे! हमें रोता छोड़ चले गये।' दुःखभरी चीत्कारें समीप के वातावरण को चीर रही हैं। शायद कोई मौत हो गयी है।

मातमपुर्सी के लिये लोग घर के बाहर एकत्रित हो रहे हैं। मौत का दुःखद समाचार सुनकर शव के दाह संस्कार के लिये पास-पड़ोसी

इकट्ठे हो रहे हैं। सभी के मुख आन्तरिक क्लेश से मुरझाये-से हुए हैं, जैसे सूखते हुए वृक्ष के मुरझाये पुष्प !

यों तो मृत्यु पर सबका क्लेश स्वाभाविक है, किन्तु इस व्यक्ति के मरने का आज सभी को विशेष विक्षोभ है। परिवार के मुखिया के मरते ही अब बेचारों के पास कमाकर खिलाने वाला और कोई नहीं बचा है। छोटे बच्चे बिलख रहे हैं। चौंतीस वर्ष की विधवा पछाड़ खा-खाकर मूर्छित हो रही हैं।

पूरा परिवार ही जैसे संसार रूपी सागर में डूब गया है। क्रूर मृत्यु कभी भी, समय-असमय मनुष्य को धर दबाती है। उस पर छाये हुए उत्तरदायित्व तक को नही देखती। जीवन की यह क्षणभङ्गुरता ही वैराग्य के पथ का प्रथम सोपान है।

हाय ! अब इस परिवार के बच्चों को कौन पालेगा ? कौन पढ़ायेगा ? कौन उस विधवा को सान्त्वना देगा ? कन्याओं के शिक्षण और विवाह का कौन प्रबन्ध करेगा ?

चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखायी देता है। मृत्यु भी कितनी निर्भय है !

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद् भरामि समा विभेः ॥

(अथर्ववेद ८।२।२३)

अर्थात् यह मृत्यु मनुष्य, जीव, जन्तु किसी को भी नहीं छोड़ती। यह मृत्यु सबसे शक्तिशाली है। इसका दर्जा सबसे ऊपर है। यदि तू इससे बचना चाहता है तो अपनी आत्मा को जान और ज्ञानवान होकर मृत्यु से डरता रह।

गुजर-बसर की बात तो बाद में आयेगी, अभी तो इस शव की अन्त्येष्टि-क्रिया का सवाल है। इसमें डेढ़ दो सौ रुपया व्यय होता है। पैसा नहीं, तो शव का दाह-संस्कार तक दुर्लभ है।

जहाँ अचानक मौत हो जाय, घर में पैसा न हो, कोई दूसरा कमाने वाला न हो, मँहगाई के इस युग में आकस्मिक मौत विधाता का बड़ा कठोर उपहास है। मृत्यु का क्षोभ तो होता ही है, दाह-संस्कार तक के लिये पैसे की मजबूरी काँटो की तरह चुभती है। शरीफ सफेदपोश आदमी को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और लोक-लाज का भी ध्यान रखना पड़ता है।

लीजिए शोक मनाने और सहानुभूति दिखाने वालों का जमघट हो गया। दाह संस्कार के लिए जाने की तैयारी शुरू होने वाली है। रोने-पीटने के बीच में धीरे-धीरे यह फुसफुसाहट सुन पड़ती है। आने वाले काना फूँसी कर रहे हैं—

'क्यों, कुछ रुपये का प्रबन्ध हो जाय, तो दाह-संस्कार के लिए—लकड़ी, घी, कफन इत्यादि के लिए आदमियों को बाजार भेजा जाय ?'

'विधवा के पास पैसे नहीं हैं ? पैसे का सवाल विकट है।'

'डेढ दो सौ से भी अधिक रुपया खर्च होगा।'

नही, नहीं, यह भी कम है। मँहगाई का जमाना है। इज्जतदार घर है। शायद इससे भी अधिक खर्च होगा। सोलह रुपये किलो घी बिक रहा है।

'तो फिर चन्दा कर दाह-संस्कार के लिये पैसे इकट्ठे कर लिये जाँय किससे कितना-कितना चन्दा लें ? दो-दो रुपये ?'

'छि: छि: चन्दे से शव उठेगा ! बड़ी लज्जा की बात होगी।'

'काफी देर होती जा रही है। इनके यहाँ कोई ऐसा रिश्तेदार भी तो मौजूद नहीं।'

इस प्रकार सबके सामने मुर्दे को फूँकने के लिये पैसे की विकट समस्या मुँह बाये खड़ी थी ? कौन कितना चन्दा दे ? किन्तु यह रकम व्यर्थ ही कोई क्यों फेंके ? दान का तो दिखावा होता है। वह तो बदले में बहुत अधिक पाने का बयाना होता है। यहाँ दिखावा—बयाना तो सम्भव था नहीं।

मनुष्य की महानता, उसकी दान-प्रवृत्ति, सङ्कट में गुप्त दान, गुप्त सहायता और बिना मांगे सहायता देने में होती है। पर ऐसा गुप्त दानी इस भीड़ में कोई नहीं दीखता। लोगों में बातें चल ही रही थीं कि नगर के वयोवृद्ध पं. शारदा महाराज आते हुए दिखायी दिये। वे भी आकर थोड़ी देर चुपचाप बैठकर लोगों की खुसर-पुसर सुनते रहे। पैसें का कैसे इंतजाम हो ? यही विकट समस्या सबको उलझन में फँसाये हुए थी। कोई भी देने को तैयार न था।

इतने में एक दैवी चमत्कार हुआ।

'मित्रो ! दाह-संस्कार के लिये ये रहे रुपये !' शारदा महाराज ने अपनी जेब से बटुवा निकालते हुए कहा—'यह लीजिए, पांच सौ रुपये ! इस मौके पर इतने रुपयों से आपका काम चल जायगा।'

'पाँच सौ !' इतने रुपयों की सहायता ! इसमें तो बहुत रुपये बच जायँगे। ओफ ! यह ईश्वर का क्या करिश्मा था ! सबकी आँखें वयोवृद्ध महाराज पर लग गयीं ! आदमी के शरीर में से जैसे प्रत्यक्ष ईश्वर ही बोल रहे थे।

सङ्कट के समय यह पाँच सौ रुपये की आर्थिक सहायता मानो परमात्मा के घर से भेजी गयी सात्विक सहायता थी ! अन्धकार में दैवी प्रकाश था। रुका हुआ रथ, जैसे यह सहायता पाकर आगे खिसक रहा था।

खूब रहा। वाह ! कमाल हो गया। दान हो तो ऐसा हो। ऐन मौके पर पहुँचकर एक गरीब परिवार की सहायता की है और उनकी प्रतिष्ठा को बनाये रक्खा है। इस उदार दाम से वहाँ सभी प्रभावित थे। तरह-तरह के उत्तमोत्तम शब्दों में सभी उनकी प्रशंसा में कुछ न कुछ कह रहे थे। 'दानों हो तो शारदा महाराज जैसा हो। पाँच सौ रुपये दे दिए। वाह ? कमाल के दानी हैं !'

'लो भाई ! लो, दाह-संस्कार के लिये अब सब सामान खरीद लाओ ।'

कुछ आदमी लकड़ी का प्रबन्ध करने श्मशान घाट दौड़ गये, कुछ कफन लेने बजाज खाने कुछ घी-चन्दन इत्यादि का इंतजाम करने चले गये । अब रुपये की मदद आ जाने से सब मन-ही-मन कुछ हलकेपनका अनुभव कर रहे थे । रुपये में भी अजीब शक्ति है ।

थोड़ी देर तक तो शारदा महाराज कुछ न बोले सब कुछ सुनते रहे । दाह-संस्कार के प्रबन्ध का कार्य देखते रहे ।

एक सज्जन बोले—महाराज आपने वक्त पर रुपया देकर हम सबकी बहुत सहायता की है । इस घर की प्रतिष्ठा बचा ली है ।'

दूसरे ने कहा—'सचमुच दाह-संस्कार से पहले ही मित्र के घर पहुंचकर उसके प्रबन्धकों को पाँच सौ रुपये की गुप्त सहायता दे देना बड़ा उत्तम धार्मिक कार्य है । मित्र हो तो ऐसा ही हो, जो संकट के समय अपने मरे हुए मित्र की प्रतिष्ठा की रक्षा करे । वही सच्चा दोस्त कहलाने का अधिकारी है । शारदा महाराज ! आप धन्य हैं। आपजैसे दानियों को पाकर मानवता धन्य हुई ।'

'नहीं, आप ऐसा न कहें ! मैं इतना ऊँचा नहीं हूं ।' शारदा महाराज बोले ।

'यह क्या कह रहे हैं ?' सबके कान उधर ही लग गये । सभी कान ध्यान पूर्वक सुनने लगे कि आखिर क्या रहस्य है ? वे क्या स्पष्टीकरण कर रहे हैं ?

शारदा महाराज बोले—

'बात यह कि मैं यह पाँच सौ रुपये की रकम गुप्त दान नहीं कर रहा हूं । रहस्य कुछ और ही हैं..... ।'

'तो फिर क्या भेद छिपा है ?'

'कहिये, क्या स्पष्ट करना चाहते हैं ?'

वे कहने लगे, रहस्य यह है कि 'मैंने अपने इन स्वर्गीय मित्र से ये पाँच सौ रुपये बहुत दिन हुए उधार लिये थे। उस समय इनके पास रुपये थे। यह भेद वे और मैं, हम दोके अलावा कोई नहीं जानता था। मेरे इन उदार स्वर्गीय मित्र ने न कभी अपने रुपये वापिस माँगे और मेरी गलती यह हुई कि मैंने उनका यह धन उन्हें वापिस भी नहीं लौटाया। यह बात चुपचाप यों ही सबसे छिपी रही। मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा का ये बड़ा ख्याल करते थे। रुक्का-परचा लिखाने या दूसरों के सामने उधार लिये हुए रुपये का जिक्र करने से मेरी इज्जत में बट्टा लगेगा, मेरे आत्म स्वाभिमान को ठेस लगेगी, यह सोचकर उन्होंने कभी इस उधार ली हुई रकमका जिक्र, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, आज तक किसी से नहीं किया। कैसे उदार थे वे !'

यह कहकर थोड़ी देर वे चुप रहे। अपने नेत्रों को पोंछते रहे। फिर आगे बोले—

'उनके निकट सम्बन्धियों—पत्नी, पुत्र तक को इस उधार की रकमका कोई पता नहीं था। उसके सम्बन्ध में मैं जानता था या वे ! तीसरा कोई नहीं ! हाय ! अब वे तो दुनियाँ में रहे नहीं, सिर्फ मैं ही इस रहस्य को जानने वाला रह गया ! मुझे जैसे ही उनकी आकस्मिक मृत्यु का दुःखद समाचार मालूम हुआ, मैंने तुरन्त पाँच सौ रुपये का प्रबन्ध किया और उन्हें देकर मैं दाह-संस्कार के पूर्व ही उनके ऋण से उऋण हो रहा हूं। यह धन कर्ज की अदायगी है। इन्ही का है। न दान है, न उदारता है। कृपा कर इस धन को उन्हीं के अन्तिम संस्कार में लगा दीजिये। बचे सो उनकी धर्म पत्नी और पुत्रों को दे दीजिए। आज तक उन्होंने कभी अपने कर्ज का तकाजा नहीं किया था। आज इस कर्ज को अदा कर मैं अपनी अन्तरात्मा में हल्के पनका अनुभव कर रहा हूँ।'

यह स्पष्टीकरण करते-करते वयोवृद्ध शारदा महाराज के नेत्रों में गरम आँसू आ गये !

यदि वे बेईमान होते तो इस कर्ज का भेद किसी को भी न बताते और बड़ी आसानी से रुपये मार लेते। अविदित ऋण तो मरा हुआ ही होता है। न उसका रहस्य कोई जानता है, न वह वसूल ही होता है।

लोगों को उनकी ईमानदारी देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने बिना माँगे ही मरे हुए व्यक्ति का गुप्त ऋण लौटा दिया था।

कितने गौरव की बात है कि हम लोगों के बीच ऐसे ईमानदार देव पुरुष अब भी मौजूद हैं। ऐसे लोगों के देव गुणों से ही पृथ्वी पर स्वर्ग आ सकेगा। चाहे कोई जाने या न जाने, जो वायदा कर लिया उस पर जमे रहना, अपने वचनों की रक्षा करना, ईमानदारी बनाये रखना—ये देवताओं के गुण हैं। इनसे प्रकट होता है कि मनुष्य ईश्वर का पुत्र है।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥
(ऋग्वेद १।१।३)

अर्थात् हम ईश्वर के बनाये सात्विक और ईमानदारी के नियमों से ही धन कमायें। बेईमानी का धन सदा हमसे दूर रहे। अनुचित रीति से कमाया धन हम न रखें। हम सदा—आजन्म धर्म से कमायें और धर्म में ही खर्च करते रहें।

मौत की सजा

'सेशन जज साहब के दामाद का किसी व्यक्ति से झगड़ा हो

गया।' 'झगड़ा ही हुआ या कुछ और भी ? बड़ी दिलचस्प बात है। पूरी बात कहो, क्या-क्या हुआ ?'

सड़क के किनारे पर खड़े वे दोनों आदमी सेशन जज साहब के दामाद के झगड़े की बातों में रस ले रहे थे।

एक बोला, 'अजी', कुछ न पूछो। दामाद साहब थे तो बड़े अच्छे आदमी, पर मनुष्य पर जब क्रोध सवार होता है तो उसका विवेक नष्ट हो जाता है। उस व्यक्ति ने बहुत बुरी-बुरी बातें कहीं और वह मारने को झापटा तो इन्हें भी गुस्सा आ गया और गुस्से से ऐसा आघात लगा कि उसकी घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गयी और दामाद साहब पुलिस के द्वारा रंगे हाथों पकड़े गये।

'ओफ ! सेशन जज साहब के दामाद द्वारा खून ! अरे ! यह तो बड़ा गजब हो गया हैं....कत्ल के कारण मौत की सजा मिलेगी, तब तो बेचारे जज साहब की क्या दशा होगी। अभी कुछ ही दिन पहले तो विवाह हुआ था।'

'हाँ, हाँ ! और क्या। कत्ल करने की सजा तो फाँसी ही है। लेकिन....आजकल छोटे-छोटे राज्य कर्मचारियों में तो क्या, बड़े-बड़े मन्त्री तक भाई-भतीजे-वाद, पक्षपात और निहित स्वार्थों की कीचड़ में सने हैं। इससे सामान्य जनता को न्याय नहीं मिल पाता....छूट जायँगे।'

'यह ठीक कहा तुमने। थोड़े से अमीर लोग हों, बड़े, अफसर हों, उन्हीं की शासन में प्रभुता हो, जब हमारे समाज में बेईमानी की बुरी स्थिति हो, कर्मचारी पथभ्रष्ट हों, तो भला देश को न्याय क्यों कर मिल सकता है ? सेशन जज लाला श्यामनाथ दामाद के कत्ल के मामले को घूस देकर रफा-दफा करा देंगे। मैं कहता हूँ—बेचारे दामाद साफ बच जायँगे। ऐसा होना भी चाहिये। अभी कलका लड़का है। क्रोध में सवनाश कर दिया।'

जज श्यामनाथ ने अपनी पुत्री का विवाह बड़े ही सम्भ्रान्त घराने में किया था। उनका दामाद एक सुशिक्षित युवक था। दुर्भाग्य से वह बड़ा क्रोधी और उत्तेजक स्वभाव का था। आवारागर्द मित्र मिल जाने से वह बिगड़-सा गया था। अभी उस विवाह को दो ही वर्ष हुए थे कि हाथापाई में गुस्सा बढ़ा, दुष्ट मित्रों ने प्रोत्साहित किया और दामाद साहब के ऊपर कत्ल का मुकदमा बन गया।

कानून अन्धे की लकड़ी की तरह है। इसकी पहुंच की परिधि में जो भी आ फँसता है, वही पिटता है। यह किसी को नहीं बख्शता! मुकदमा चला और दामाद साहब उसमें ऐसे उलझ गये, जैसे काँटों की झाड़ी में रेशमी साड़ी। न निकले, न सुलझे। कत्ल का मुकदमा संगीन है। मौत और जिंदगी का सवाल होता है।

संयोग की बात

यह मुकदमा लाला श्यामनाथ सेशन जज साहब की कोर्ट में ही आ गया। जज साहब असमंजस में थे कि कैसे क्या न्याय करें। कत्ल का कोई प्रत्यक्ष दर्शी गवाह तो नहीं था; पर घटना स्थल पर दामाद साहब ही रंगे हाथों गिरफ्तार हुए थे। पुलिस ने उनके विरुद्ध मुकदमा बनाया था।

कठोर नैतिक परीक्षा की घड़ी थीं। उन्हें उसका निर्णय करने का साहस नहीं हो रहा था। अब क्या करें?

उन्होंने मन में कहा, 'मैं बुजुर्ग जज हूं। इतने वर्षों से अपनी न्याय प्रियता के लिये प्रसिद्ध हूं। कभी एक पैसा रिश्वत नहीं ली, किसी की सिफारिश नहीं मानी, न्याय के पक्ष का सदा समर्थन किया। अब इस मुकदमें में मेरा ही दामाद अभियुक्त है, पर मैं अपने ऊपर पक्षपात, स्वार्थ या न्याय की हत्या का दोष कैसे लूंगा?'

जिस प्रकार रेल के पहिये फंसे रहने के कारण पटरी के आधीन होते हैं, उसी प्रकार अपना स्वार्थ निहित रहते, या पारिवारिक सम्बन्ध

जुड़े रहने के कारण पूर्व निर्धारित मान्यताओं में फंसे रहने की वजह से मस्तिष्क की गति उनकी गुलाम बनी रहती है। ऐसी परिस्थिति में आदमी जो भी सोचता या निर्णय देता है, उसमें पक्षपात का आग्रह रहता ही है। इस प्रकार का एकाङ्गी अथवा पक्षपाती मस्तिष्क कभी अच्छा मित्र नहीं रहता। जिस प्रकार किसी मित्र के प्रभाव में रहने से कोई उसका परामर्श मानने का अभ्यस्त रहा करता है, उसी प्रकार मस्तिष्क के प्रभाव में रहने से मनुष्य उसकी आज्ञा मानता ही है। ऐसी स्थिति में पक्षपाती मस्तिष्क न्याय देने में सक्षम नहीं होता।

बहुत सोच-विचार कर जज साहब ने सरकार को अपनी मनःस्थिति स्पष्ट करते हुए एक पत्र लिखा—

'चूँकि यह मुकदमा ऐसा है, जिसमें अभियुक्तका मुझसे सीधा सम्बन्ध है, मुझसे मानव- दुर्बलता वश कहीं अन्याय या पक्षपात न हो जाय, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि यह मुकदमा किसी अन्य जज महोदय की अदालत में ट्रांसफर कर दिया जाय।'

स्पष्टी करण कर जज साहब सोच रहे थे कि वे उलझन से निकल गये हैं। कत्ल के मुकदमे का जो बुरा निर्णय होगा, वह तो अन्ततः सहन करना ही होगा। 'मैं एक साधारण मानव हूं। सम्बन्धी देखकर न्याय से फिसल न जाऊँ। मैं स्वयं को कैसे धोखा दे सकता हूँ? मैंने जीवन भर कठोर अनुशासनात्मक जीवन-क्रम व्यतीत किया है। मैं भगवान् के दरबार में झूठा नहीं होना चाहता।'

किन्तु फिर नया संकट आया।

उनके पत्र के उत्तर में तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर साहब ने लिखा, 'सरकार को आपके न्याय पर पूरा विश्वास है। आपसे पक्षपात का अपराध नहीं हो सकता। इस कत्ल के मुकदमे का फैसला आपकी अदालत में ही होगा। यह केस ट्रांसफर करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती।'

जज साहब के परिवार वाले, इष्ट-मित्र गवर्नर साहब का उत्तर सुनकर हर्षित हुए कि 'चलो दामाद की जान बच जायगी। लड़के के जीवन को कोई खतरा नहीं रहेगा। भले ही जज साहब की अदालत में थोड़ी बहुत सजा मिल जाय, पर दामाद साहब के प्राणों को तो कोई आशंका नहीं है।'

मामूली बुद्धि के आदमियों के लिये ऐसा सोचना स्वाभाविक भी था। मनुष्य न चाहते हुए भी अपने परिवार, सम्बन्धी और मित्रों के पक्ष में अनायास ही भावुक हो उठता है। मोहवृत्ति में उसे उचित-अनुचित यथार्थ हानि-लाभ, न्याय-अन्याय का विवेक नहीं रहता। स्वार्थ की संकुचित भावनाएं आदमी के गुप्त मन में बुरी तरह चिपटी रहती हैं। मनुष्य स्वयं अपना ही सीमित लाभ सोचता है। वह संकुचित स्वार्थों में उसी प्रकार चिपटा रहता है, जैसे कीचड़-में कमल! स्वार्थ भावना हमें ईर्ष्या-द्वेष में फंसाये रखती है। प्रायः देखा जाता है कि कई नीच प्रकृति के व्यक्ति स्वार्थ वश किसी से मित्रता कर लेते हैं, किंतु जब उनका स्वार्थ पूरा हो जाता है, तो उसे त्याग देते हैं। ऐसे संकुचित वृत्ति के लोगों को समाज में निन्दा और अपयश ही मिलता है।

कत्ल के इस मुकदमे की सुनवाई लाला श्यामनाथ के कोर्ट में ही हुई। पुलिस ने उन्हें घटना स्थल पर रंगे हाथों पकड़ा था। सरकारी वकील ने सबूत पेश किया और फिर वकीलों में बहस हुई। परिस्थिति ही कुछ ऐसी बनी कि अदालत में युवक को कत्ल का अपराधी ठहराया गया। हत्या का अपराध सिद्ध हो गया।

यदि जज साहब कोर्ट से बाहर होते, तो घर वाले उनके दामाद को बचाने के लिये पुनः उनसे अनुनय-विनय करते, पर कोर्ट में जज की कुर्सी पर बैठे हुए श्यामनाथ जी तक कोई सिफारिश पहुंचाना सम्भव नहीं था। मुकदमे का फैसला खुद जज साहब की विवेक बुद्धि और न्याय परायणता पर टिका हुआ था।

किसी को पता नहीं था कि मुकदमे का फैसला क्या होगा ? कोर्ट में बड़ी सरगर्मी थी। लोग निर्णय के सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान लगा रहे थे।

उनके सम्बन्धी सोच रहे थे कि 'जज साहब के अखिरी फैसले में कोई लूपहोल निकलकर दामाद किसी न किसी प्रकार मुक्त हो जायगा, क्योंकि जज साहब से कई बार पहले ही सिफारिश करायी जा चुकी थी। इस मामले में स्वयं उनकी सुपुत्री के सुहाग का प्रश्न था। मनुष्य स्वार्थ से कब छूटता हैं ? यहाँ भी और जगहों की तरह स्वार्थ न्याय की गर्दन पर सवार हो जायगा।

जब मनुष्य अकेला होता है, उसके आसपास शान्ति और विवेक होता है, तो उसे कोई पाप करने में भय लगता है। एक शंका होती है।

वह किसके कारण होतीं है ?

उसे बार-बार ऐसा क्यों लगता है कि कोई उसके पाप को देख रहा है?

क्यों उसका शरीर पाप कर्म में प्रवृत्त नहीं होता ?

और क्यों बाद में पापी की तरह वह मलिन रहता है ? क्या कभी कोई इस बात पर विचार करता है कि जब उसके पाप को देखने वाला कोई मौजूद नहीं, तब उसे डर किसका है ?

कौन उसे अन्याय पूर्ण कार्य करने से निः शब्द रोकता है ? कौन उसे पाप से रोकता है ? कौन उसके मन, प्राण और शरीर में कम्पन उत्पन्न कर देता है ?

निस्संदेह यह मनुष्य की स्वयं अपनी ही अन्तरात्मा है, जो उसे पाप से हटाने के प्रयत्न में विविध प्रकार की शङ्काओं, संदेहों एवं कम्पन आदि से सावधान करती रहती है। जो मनुष्य अपने इस अन्तरात्मा के संकेतों की उपेक्षा नहीं करता, वह पाप-कर्म से बच जाता है, पर

जो मनुष्य उसकी अवहेलना करके पाप करता है, उसकी अन्तरात्मा एक न एक दिन उसकी गवाही देकर दण्ड का भागी बनाती है।

यह हो सकता है कि किसी का पाप-कर्म, अन्यायपूर्ण आचरण दुनिया से छिपा रहे, किन्तु उसके अपने अन्तरात्मा से कदापि नहीं छिप सकता। जब किसी कारण वश मनुष्य को अपने पाप का दण्ड किसी और से नहीं मिल पाता, तो समय आने पर उसकी अन्तरात्मा उसे स्वयं दण्डित करती है।

जज साहब ने अन्तरात्मा में विद्यमान परमात्मा की आवाज को सुना और उसका अनुसरण करने का निश्चय किया। मानव की निर्मल अन्तरात्मा उसके शरीर का कोई अवयव मात्र नहीं है। वह मानव-शरीर में ईश्वर का प्रतिनिधि है, जो हर समय मनुष्य के कार्यों का लेखा-जोखा तैयार किया करती है। हमारी यह अन्तरात्मा एक ऐसा आलौकिक यन्त्र है, जिसके माध्यम से ईश्वर मनुष्य के लिये अपना संदेश भेजा करता है।

जज साहब ने अपने ही अपराधी दामाद का फैसला सुनाया, तो वह आशा से सर्वथा विपरीत था। सभी हैरत में थे कि यह विरोधी निर्णय कैसे हो गया।

जज साहब ने न्याय की दृष्टि से पक्षपात रहित फैसला सुनाते हुए खुद अपनी ही कलम से अपने प्रिय दामाद को फाँसी का दण्ड दे दिया था, पर उनके चेहरे पर शिकन न था। वे उस समय न्याय-मूर्ति जज थे और उनका दामाद एक कातिल ! हत्या का अपराधी।

विलक्षण न्याय प्रियता थी !

फाँसी की सजा सुनकर सब अवाक् रह गये। इन जज साहब को आज क्या हो गया है ? क्या इनके हृदय में अपनी पुत्री के प्रति प्रेम या स्नेह जरा-भी नहीं हैं। क्या इनके दिल में धड़कन नहीं है ? क्या ये खुद अपने हाथों पुत्री को विधवा बनाने जा रहे हैं ? क्या वास्तव में

श्वसुर के हुक्म से दामाद को फाँसी के क्रूर झूले पर झूलना ही पड़ेगा ? जितने मुँह, उतनी ही बातें !

फैसले के बाद कान्स्टेबिल हथकड़ी-बेड़ी डाले अपराधी को जेल खाने ले जाने लगे। अदालत में सर्वत्र काना-फूँसी चल रही थी। स्वयं अपने हाथों अपने दामाद को मौत की सजा ! ऐसा विलक्षण न्याय कोर्ट में लोगों ने पहली बार ही देखा था !

'ठहरो ! तनिक मुझे इनसे मिलना है।'

यह कहकर जज साहब अपराधी के साथ कोर्ट के बाहर चले आये। यह क्या ! जज साहब, दामाद के गले से लिपट कर फफक फफक कर बिलखने लगे ! वृद्ध का करुण-क्रन्दन आस पास के लोगों से देखा नहीं जाता था ! वे इतना फूट फूट कर रोये कि हिचकी बँध गयी। बेहोशी-सी आने लगी। पास खड़े कान्स्टेबिल चकित खड़े उनका विछोह देख रहे थे। उन्हें रह-रह कर यह भाव आ रहा था कि न्याय रूपी चक्की के पत्थरों में उन्होंने अपनी पुत्री का सुहाग पीस डाला था। उनका मनस्ताप अवर्णनीय था।

उस दिन अदालत में और कुछ न हो सका शेष सब मुकदमे स्थगित कर दिये गये। कई अधिकारियों ने पकड़ अर्द्ध विक्षिप्त जज साहब को उनकी कोठी तक पहुंचाया। कोर्ट में एक अजीब उदासी छा गयी।

जब जज साहब घर लौटे, तो वहाँ उससे भी भारी कुहराम मचा हुआ था। माँ और पुत्री का करुण विलाप देखकर उनके नेत्रों से और तेजी से अश्रुधारा बह निकली। वे धीरे से अपने कमरे में चले गये और गुमसुम बैठ गये। सोच रहे थे, 'हाय ! इस ट्रैजिडी का मैंही उत्तर दायी हूं। स्वयं अपने ही कलम से न्याय प्रियता के चक्कर में दामाद को मृत्यु दण्ड दे आया, जब कि यदि मैं चाहता, तो उसे बचा सकता था। लोग चार दिन चर्चा करके खुद ही चुप हो बैठते।'

मृत्युदण्ड के लिए जो तारीख फैसले में थीं, उसमें अभी देर थी। इस फैसले की चर्चा होते-होते उच्च अधिकारियों तक पहुंची। गर्वनर ने स्वयं इसमें दिलचस्पी ली और तुरन्त तार भेजकर जज साहब के दामाद को मुक्त कर दिया या ऐसी व्यवस्था हुई, जिससे उनको उच्च न्यायालय से मुक्त कर दिया गया !

सत्पुरुषों के आभूषण

महाराष्ट्र में एक महिला उत्सव ! राजमहल में इस महिला उत्सव को राजकीय स्तर पर आयोजित किया जा रहा है। राजमहल का महिला कक्ष विशेष रूप से सुसज्जित किया गया है। रङ्ग बिरङ्गी झन्डियाँ, सुन्दर द्वार, चित्र इत्यादि लगाये गये हैं। राजपथ को जाने वाली सड़क पर रङ्गीन मिट्टी से लीप पोतकर भव्य चित्रकारी की गई है। बेलबूटे और तरह तरह के रङ्गीन कागज लगाकर सजावट को द्विगुणित किया गया है। आज राजमहल नई दुलहिन सा आकर्षक प्रतीत होता है।

महाराष्ट्र के अधिपति पेशवा माधवराव इस महिला उत्सव को पूर्णतः सफल बनाने में अभिरुचि रखते हैं। वे सजावट में स्वयं काफी सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं। उन्होंने राजकीय आदेश जारी किया है कि यह नारी उत्सव प्रान्त की संस्कृति के अनुरूप बड़े वैभव से सम्पन्न किया जाये। राजकीय ऐश्वर्य का पूर्णतः प्रदर्शन हो। राजधानी की अधिक महिलाएँ उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग, सभी की नारियाँ उत्सव में मुक्त हृदय से भाग लें। राजकीय धन का कितना ही अपव्यय क्यों न हो, पर ऐश्वर्य और परम्परा के अनुकूल ही सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन रहे।

सभी राजकीय कर्मचारी तथा राजधानी के लब्ध-प्रतिष्ठित नागरिक सजावट तथा अन्य कार्यक्रम की सफलता के लिए भागदौड़ कर रहे हैं। जहाँ विपुल धन व्यय किया जाय, नागरिक और राजकीय शक्तियों का सहयोग हो, वहाँ क्यों न सफलता मिलेगी।

स्वयं पेशवा माधवराव राजसी मूल्यवान वस्त्र पहिने हैं, किन्तु सबसे अधिक उल्लास और सौन्दर्य-विभूषिता तो महारानी जी हैं, जिनमें आज राजकीय वैभव के साथ चुम्बकीय आकर्षण है। बहुमूल्य वस्त्र और हीरे मोतियों के तरह-तरह के आभूषण धारण करने के कारण वे पृथ्वी पर उतरी स्वर्ग की कमनीय अप्सरा जैसी रमणीय प्रतीत होती हैं। जिधर निकलती हैं, उधर ही जैसे सौन्दर्य की किरणें बिखेरती चलती हैं। नारी जगत की तड़क-भड़क एवं वैभव का प्रदर्शन आज सर्वोच्च सीमा पर है।

राजधानी की सब उच्चवर्गीय अमीर परिवारों की रमणियों को आमन्त्रित किया जा चुका है। सौन्दर्य के झुण्ड राजमहल की ओर अग्रसर होते आ रहे हैं। उनका हर्ष से स्वागत किया जा रहा है समस्त राजकीय कर्मचारियों की धर्मपत्नियाँ आ पहुँची हैं। बाजों की ताल पर सबके हृदय मानो थिरक रहे हैं।

लेकिन एक कमी राजरानी को चिंतित कर रही है।

राजमहल में पेशवा माधवराव के प्रधान न्यायाधीश की पत्नी की प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है। उनकी देरी के कारणों का अनुमान लगाया जा रहा है।

राजकीय "प्रधान न्यायाधीश की धर्म पत्नी जी अभी तक क्यों नहीं पधारीं? इतने बड़े महिला-उत्सव में उनकी अनुपस्थिति सबको बड़ी खटक रही है?" महारानी पूछ रही थीं।

"महारानी जी, उनके आगमन की हर क्षण प्रतीक्षा हो रही है।"

"आखिर क्या कारण हो सकता है उनकी देरी का?" महारानी ने फिर पूछा।

"कदाचित् वे महिला उत्सव के अनुरूप साज-शृंगार न कर पाई होंगी अभी तक।" एक महिला ने अनुमान लगाया।

"हाँ, श्रीरामशास्त्री जी जैसे प्रधान मन्त्री और राज्य के प्रधान न्यायाधीश की पत्नी के वस्त्र आभूषण मराठा राज्य के उच्च स्तर के अनुकूल ही होने चाहिए।"

"किसी को तुरन्त भेजकर मालूम कराओ इस हर्ष उल्लास के सांस्कृतिक पर्व में भाग लेने के लिए वे यहाँ कितनी देर में पहुँच रही हैं? इतने ऊँचे स्तर की महिला का साज शृंगार राजकुल के अनुरूप उच्चकोटि का होना चाहिए, इसमें क्या सन्देह है?"

फिर क्या था दो-तीन दासियाँ तुरन्त महामन्त्री के घर भेजी गई। राज्य में रहने वाली सभी उच्चस्तर की महिलाएँ पहुंच चुकी थीं। राजमहल तालाब में खिले रङ्ग बिरंगे कमल के पुष्पों के समान सुरभित था।

उधर स्वयं महारानी भी अपने रूप शृंगार को बढाने और सज्जा निखारने में लगी हुई थीं। प्रतिक्षण अपनी भाव भंगिमाएं देखने के लिए आदमकद शीशे के सम्मुख खडी होती और स्वयं अपने ही सौन्दर्य की प्रशसा करती मन ही मन उस पर मुग्ध होतीं। उनकी दबी हुई इच्छा थी कि कोई उनके लावण्य की प्रशंसा करे। हर नारी अपने को रति के समान आकर्षक समझती है।

यकायक शोर मच गया। महिलाओं में तो जैसे तूफान आ गया।

"लीजिए, प्रधान मन्त्री जी की धर्मपत्नी पधार रही हैं।" सबके उत्सुक नेत्र उधर ही लगे थे, चन्द्र चकोर की तरह।

आदर पूर्वक महारानी को नमस्कार किया।

"अहह! आइये आपकी तो बडी देर से बाट देखी जा रही थी। महारानी जी ने उनका स्वागत करते हुए कहा—

"देरी के लिए क्षमा करें!" कहते हुए प्रधानमन्त्री की धर्मपत्नी

ने आदरपूर्वक नमस्कार किया। कुछ लज्जा का भाव था उनके चेहरे पर।

लेकिन ओह ! उन्हें सीधे सादे वेश में देख महाराष्ट्र की महारानी आश्चर्य में डूब गई। साधारण से वस्त्र, हाथों में दो दो काँच की चूड़िया, गले में हार, नाक में मामूली सी लोंग और कर्णफूल। पूरा वेश जन-साधारण जैसी मामूली, सद् गृहस्थ नारी की तरह।

कैसी हैं प्रधान मन्त्री और प्रधान न्यायाधीश की धर्मपत्नी ! कोई साज शृंगार नहीं ! रूप लावण्य को बढ़ाने के प्रसाधन प्रयोग में नहीं लाये गये थे। मामूली सी पोशाक ! आडम्बर विहीन वेश भूषा ! गृहस्थों जैसी भारतीय नारी !

राज्य के सबसे ऊँचे कर्मचारी की धर्मपत्नी के शरीर पर सोने को छोड़ चाँदी तक का एक भी जेवर न था।

उधर महारानीजी को आशा थी कि राजकीय महिला-उत्सव पर तो कम से कम वे उच्चकोटि का बनाव शृंगार करके आयेंगी ही। उन जैसी टीप-टाप और कीमती पोशाक पहिने हुए होने के कारण दोनों स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित दो सोने की अप्सराओं जैसी आकर्षक प्रतीत होंगी।

पर उफ ! इस सीधी सादी वेश भूषा को देखकर उनकी रङ्गीन कल्पनाओं पर जैसे तुषारापात हुआ। महामन्त्री की धर्मपत्नी की सादगी से वे मन में व्यग्र हो उठीं। यह उन्हें अपने से गिरी हुई अपमानजनक स्थिति प्रतीत हुई। आत्मग्लानि से वे ऐसी व्यथित हुई, मानों सैकड़ों बिच्छू उन्हें अन्दर ही अन्दर काट रहे हों।

वे सोचने लगीं, 'ऐसी साधारण वेश भूषा में इतने बड़े राजकीय उत्सव में सम्मिलित होना तो राज्यकुल और महाराष्ट्र की भारी निन्दा है। जब इन्हें मेरे साथ राजसी वैभव के साथ देखेंगी, तो सम्भ्रान्त परिवारों की महिलाएँ न जाने क्या-क्या व्यंग्य-बाण फेंकेगी। ताने देंगी।"

"जी हाँ, प्रधानमन्त्री और राज्य के प्रधान न्यायाधीश की धर्मपत्नी को इस प्रकार दरिद्र वेश में देखकर राज्य का अपमान होगा।" एक महिला बोली।

"यही नहीं, महारानीजी, इसमें तो श्रीमन्त पेशवा महाराज की कृपणता ही टपकेगी।" दूसरी रमणी ने व्यंग्य किया—

"फिर आप सबकी क्या राय है ?" महारानी ने पूछा—

"अशिष्टता के लिए क्षमा करें ! अब उत्सव का समय निकट है। अब इन्हें वापिस वस्त्र और आभूषण बदलने तो भेजा नहीं जा सकता।"

"फिर क्यों न राजपरिवार से ही वस्त्र और आभूषणों का प्रबन्ध किया जाय। "महारानी जी ने सुझाव दिया।

'इससे बढ़कर तो और कोई समयानुकूल बात ही नहीं हो सकती।'

"और इसमें उनका सम्मान ही है। उन्हें आज महारानी जी के बहुमूल्य वस्त्र और बेशकीमती रत्नों वाले आभूषण धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

"ठीक है आप सबकी सलाह उचित ही है।" महारानी जी ने निश्चय कर लिया।

"फिर स्वयं आप ही इनसे कह दीजिए अपने मन की बात।"

महारानी के सुझाव को अस्वीकार करना आसान न था फिर उन्होंने बड़े शिष्ट और प्रेम पूर्ण शब्दों में श्रीरामशास्त्री जी की धर्म पत्नी से आग्रह किया था कि वे राजकीय गौरव को बनाये रखने और राजकीय स्तर के अनुकूल आज तड़क-भड़क और वैभवशाली वस्त्रभूषण धारण कर लें।

"लेकिन मेरे पतिदेव को यह आडम्बर पसन्द नहीं हैं," प्रधानमन्त्री जी की धर्म पत्नी बोलीं, "भला शानशौकत, मिथ्या प्रदर्शन और बाहरी

दिखावे से क्या होगा ? भड़कीली पोशाक के बल पर हम कितने दिन दूसरों को धोखा दे सकेंगे ?"

"नहीं, नहीं, सो बात नहीं"—महारानी जी समझाने लगीं, "यह वस्त्राभूषण तो आप कुछ देर के लिए महाराष्ट्र की राजसी शोभा बनाये रखने के लिए धारण करेंगी।"

"क्या यह बेहद जरूरी हैं ?"

"यह तो समस्त महाराष्ट्र के सम्मान का प्रश्न है।"

"क्या सम्मान बाह्य वेषभूषा पर आधारित है ?"

"आप मेरा आग्रह मानें। आज महिला उत्सव में आपका व्यक्तित्व सजधज कर राज्यकुल का वैभव ही बढ़ायेगा। मेरा प्रेमपूर्ण आग्रह स्वीकार कीजिए····सिर्फ मेरे लिए····।"

पुनः पुनः जिद करने लगीं। बार-बार अनुनय विनय देख अन्त में उनका मन रखने के लिए आखिर राजकीय वस्त्राभूषण धारण करने का आग्रह मान ही गई।

महारानी का हृदय बासों उछल रहा था। महिला उत्सव पर उनका आग्रह स्वीकार कर लिया गया था। उन्होंने स्वयं जाकर अपने वस्त्रों के कक्ष खोल डाले। आभूषणों की अलमारियाँ क्या थीं, मानो जौहरी की सजी हुई दुकानें ही हों। नए से नये डिजाइनों के हीरे मोती मानिक पन्नों तथा जवाहरात्तों के अनगिनत गहने सजे थे।

महारानी जी ने स्वयं ही महामन्त्री जी की पत्नि को तड़क-भड़क के शानदार वस्त्र पहिनाए···फिर स्वयं ही अपनी मन पसन्द के आभूषणों से सजा दिया। बनावट सजावट के बाद अब वे भी महारानी जैसी आकर्षक लग रही थीं। गोटा किनारी और गहनों से लदी गुड़िया की तरह।

अहह ! बढ़िया वस्त्रों में भी कैसा जादू है। भड़कीले वस्त्र पहिनते ही उनका मन वैभव और एश्वर्य के भावों से परिपूर्ण हो उठा। उन्हें मन में बड़ा आनन्द आया। यह उनके अहं की पुष्टि थी। नारी के

आदिम अहंभाव की परितृप्ति । हर कन्या, युवती, प्रौढ़ा, वृद्धा के मन में सुन्दर दीखने और अपनी प्रशंसा सुनने की अदम्य प्रवृति होती है । चाहे वह इस मनोभाव को कुछ देर के लिए दबा ले, अनुकूल अवसर पाते ही यह प्रवृत्ति ललचा उठती है और नारी उसके मोह में डूब ही जाती है ।

महामन्त्री जी की धर्म पत्नी जो सदा सादगी में सन्तुष्ट थीं, आज राजसी वस्त्रों में अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रही थीं । उस साज शृंगार का विमोहक जादू उन पर चढ़ गया था । उनका हृदय आनन्द उपवन में मयूर की भाँति नृत्य कर रहा था ।

एक तो राजकीय सम्मान, दूसरे उच्च शासकीय पद और उस पर यों राजसी ठाठ बाट ! उन्हें जीवन एक सुखद स्वप्न सा मादक मोहक प्रतीत हुआ ।

सौन्दर्य ज्योति हर दिशा में जगमगाने लगी । आनन्द भावना के विहग व्योम में उड़े । धरा पर मानो स्वर्ग जैसी सुन्दरता बिखर गई ।

महिला उत्सव बड़े शान से सम्पन्न हुआ । राजकीय स्तर की तड़क भड़क की प्रतियोगिता ही तो थी वह । जिसे देखो, वही अपने आपको एक से एक बढ़कर अमीर दिखाने का प्रयत्न कर रहा था । बड़ा भव्य ! प्रेरक, शुभ और सुन्दरतम । वह सब महाराष्ट्र के गौरव और परम्परा के अनुकूल समृद्ध । वैभव में गिरि शृंङ्गों को छूने वाला ।

आज समस्त महाराष्ट्र अपने स्वर्णिम अतीत पर गर्वित था । नव मधुर भावों से पूरित ।

"आज एक और आग्रह माने ? महारानी ने फिर कहा—

"आज्ञा दीजिए" महामन्त्री जी की धर्मपत्नी पूछने लगीं । "काश आपकी यह शोभा सौन्दर्य आप के पतिदेव भी देखते ।"

वे कुछ और न कह सकी । तब तक महारानी ने कहारों को आज्ञा दी, "आपको इसी ठाट-बाट से प्रधानमन्त्री जी के घर पर शाही पालकी में बैठाकर पहुँचा आओ ।'

'जो आज्ञा।'

बड़े गर्व के साथ वे शाही पालकी में फिर बैठ गई। श्रीरामशास्त्री जी की धर्मपत्नी आई तो थी पैदल, किन्तु विदाई के समय उन्हें मराठा राज्यकुल की शोभा बढ़ाते हुए शाही पालकी में बड़े शान-शौकत स बहुत सी महिलाओं के साथ विदा किया गया। एवं छोटा सा जलूस कोलाहल करते हुए शास्त्रीजी के मकान पर पहूँचा।

कहारों ने उनका दरवाजा खटखटाया। बाहर शोर गुल था। शास्त्रीजी बाहर निकले, तो यकायक आये हुए उस जुलूस, कोलाहल राजकीय टीपटाप को देखकर चकित-विस्मृत रह गये।

"अरे ! कौन हैं ये सब लोग ? यह पालकी किसकी है ?" शास्त्री जी को आश्चर्य के कारण अपने नेत्रो पर यकायक विश्वास न हुआ ! क्या वे एक मधुर स्वप्न देख रहे थे ?

फिर एक अजीब सी घटना घटी। रहस्य रोमांच से परिपूर्ण।

जैसे ही शास्त्रीजी ने अपनी धर्मपत्नी को सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों में पहिचाना, तो एकाएक दरवाजा बन्द कर लिया।

यह क्या हुआ ?

क्यों घर का दरवाजा धर्मपत्नी के लिए बन्द हो गया था। प्रधान मन्त्री की धर्मपत्नी को आत्मग्लानि के कारण मार्मिक वेदना हुई। इतने व्यक्तियों के सामने अपमान। उफ ! क्या सोचेंगे, ये लोग !

कहारों ने वस्तु स्थिति को समझा और द्वार फिर खटखटाया।

"महामन्त्री जी की धर्मपत्नी आई हैं। कृपया द्वार खोलकर इन्हें ले लीजिए।" उन्होंने पुकार लगाई।

किवाड़ फिर भी बन्द रहे। अन्दर से आवाज आई—

"बहुमूल्य शाही वस्त्राभूषणों से सजी ये राजकीय घराने की कोई और देवी मालूम होती हैं।"

"नहीं, श्रीमन्त ये आपकी धर्मपत्नी ही हैं कृपया दरवाजा खोल दीजिये।"

"मेरी पत्नी ऐसे चटकीले भड़कीले शाही वस्त्र नहीं पहिन सकती। तुम लोग भूलकर राम शास्त्री के द्वार पर चले आये हो !"

"कृपया द्वार खोलिये ! कृपया इन्हें अन्दर आने दीजिए !" किन्तु बार-बार आग्रह करने पर भी शास्त्री जी ने दरवाजा नहीं खोला। उनकी पत्नी शास्त्री जी के हठी और कट्टर स्वभाव से परिचित थीं।

निराश और लज्जित हो उन्होंने कहा—"राज भवन वापिस लौट चलो।"

सभी इस नाटकीय घटना पर सोच विचार कर रहे थे। अजीब आदमी हैं महाराष्ट्र के महामंत्री श्रीराम शास्त्री ! अपनी ही धर्म पत्नी को अपमानित कर वापिस लौटा दिया। क्या फितूर है इनके दिमाग में ?

महारानी भी चकित विस्मित सी कुछ समझ न पाई वह।

"देखिये, मैंने कहा था न कि ये वस्त्रा भूषण पसन्द नहीं करेंगे।"

"क्या बताएँ, उनका रहस्य पूर्ण व्यवहार कुछ समझ में नहीं आया।"

उन्होंने वे तड़क भड़क वाले कीमती वस्त्र और हीरे जवाहिरात के बहुमूल्य आभूषण उतार डाले। पहिले वाले साधारण वस्त्र ही धारण कर लिये। वैसे ही मामूली गृहस्थी महिला बन गई वे।

"इन शाही वास्त्रों और आभूषणों ने तो मेरे घर और परिवार का द्वार ही बन्द कर दिया है।" उन्होंने क्षोभपूर्ण स्वर में कहा—"लीजिए इन्हें सधन्यवाद वापिस करती हूं। अब मेरा वह सुखद स्वप्न टूट गया है।"

इस बार वे पालकी में न बैठ कर पूर्ववत पैदल ही अपने घर वापिस गई। खुद ही पुकार रही हैं "कृपया दरवाजा खोलिए।'

उस स्वर में न जाने कैसा माधुर्य और आकर्षण था कि अब उनके प्रेम पूर्ण स्वागत में द्वार खुला हुआ था। वे खुशी से अन्दर गईं। पतिसे क्षमा माँगी। घर का वातावरण शान्त और सौहार्द्र पूर्ण हुआ।

"क्या हो गया था आपको ?" महामंत्री की धर्म पत्नी ने आश्चर्य से पूछा—

"कुछ नहीं !" शस्त्री जी ने सरलता से उत्तर दिया।

"फिर आपने अपनी धर्म पत्नी के लिए ही क्यों उसी के घर का द्वार बन्द कर वापिस लौटा दिया था ?"

वे कुछ नहीं बोले ! वह बार-बार पूछने लगीं। "कुछ तो बताइये अपना दृष्टिकोण ?"

"बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण या तो राज पुरुषों को शोभा देते हैं, या मूर्ख उनके द्वारा अपनी मूर्खता, अज्ञान और छिछोरापन छिपाने का प्रयत्न करते हैं।"

"ओह ! ....तो आभूषण....क्या....हैं....फिर ?"

"प्रिये, सत्पुरुषों का आभूषण तो सादगी है। जीवन में सरलता ही सुखद है। आदमी के व्यवहार में सरलता और आचरण की स्पष्टता बनी रहे, तो समाज में कुछ भी परेशानियाँ नहीं आती....झूठी शान शौकत....यह राजसी दिखावा, फैशन परस्ती....और असली परिस्थिति से भिन्न रूप बनाना ही परेशानियाँ पैदा करता है....यही झूठा दिखावा मुझे पसन्द नहीं आया था।" सकुचाते हुए महा मन्त्री ने उत्तर दिया—

"ओफ ! क्षमा करें। संभ्रम दोष के कारण ही यह भूल हो गई।"

और वे फिर दाम्पत्य जीवन के स्वर्ग में विहार करने लगे। युग-युगान्तरों के संस्कारों के परिणाम स्वरूप यह सुखद संयोग मिलता है।

दो शरीरों के सम्मिलित इकाई के अनुपात में ही स्वर्ग बिखरा पड़ा रहता है।

शास्त्रों कथन है—

भार्यापत्युव्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।
संसारोऽपि हि सारः स्याद दम्पत्योरेक कः ॥

यदि पति पत्नी एक हृदय हों, तो यह असार संसार भी सारवान् बन सकता है। यहाँ इसी धरती में भी स्वर्ग के दर्शन करने हों तो हर सद्गृहस्थ को अपने दाम्पत्य जीवन में प्रेम, स्नेह आत्मीयता और अभिन्नता (एक दूसरे की रुचि, सुख, सुविधा का ध्यान) की भावना पैदा करनी चाहिए।

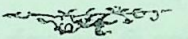

भगवान महावीर का समाधान

"मनुष्य की अवनति का कारण लोभ है।"

"नहीं, तुमने गलत कहा। लोभ से इतनी हानि नहीं होती जितनी अहङ्कार से होती है।"

"लोभ बड़ा हानिकारक है। उसके वश में लोग बड़े से बड़ा पाप करने में नहीं हिचकते।"

"अहंकार इससे भी बड़ा शत्रु है। दुनिया में हिंसा, मारकाट, अत्याचार आदि अपने को दूसरों से ऊंचा सिद्ध करने के अहङ्कार में ही तो होते हैं। लोभवश कौन हत्या करता है भला ?"

भगवान महावीर के शिष्यों में बहस चल रही थी कि मनुष्य के अधःपतन का क्या कारण है ! एक शिष्य अहङ्कार को उत्पात का मूल बता रहा था। चर्चा लगातार बढ़ती जा रही थी।

एक शिष्य कहने लगा, "देखिए न व्यक्ति क्या, अहङ्कार ने सारे

विश्व को आक्रान्त कर रखा है। आज की राजनीति बड़ी उलझी हुई है। कूटनीतिक दावपेचों के आधार पर शक्तिशाली देश अपनी प्रभुता को बढ़ाने के लिए चालें चल रहे हैं। दूसरों को गिरा कर स्वयं सम्पन्न बनना और फिर इतराना, क्या यह सब अहङ्कार का फल नहीं है ?"

दूसरा कहने लगा, "मैं यह विचार नहीं मानता। चालाक, धूर्त और लुटेरे राष्ट्र लालची हैं। वे धन की बहुत बड़ी मात्रा अपने पास जमाकर ताकतवर बनते हैं। वे लोभवश ही प्रजा को अनुचित साधनों से चूसते है। फलस्वरूप गरीबों को उचित संरक्षण नही मिलता। अधिकांश जनता शक्तिशाली राष्ट्रों के लोभ के कारण ही पिस रही है।"

"यों हम अपनी शंका का समाधान न कर पायेंगे।"

"तो क्या करें फिर ?"

"यह निर्णय तो भगवन् ही कर सकते हैं।"

"और उन्हीं का मत सर्वमान्य हो सकता है।"

"ठीक है। आओ उनके पास चलें और अपनी गुत्थी का हल करायें।"

बस, सब शिष्य भगवान महावीर के पास पहुंचे। बड़ी शिष्टता पूर्वक निवेदन किया—

"कृपाकर बताइये कि काम-वासना, लोभ और अहङ्कार में कौन बड़ा शत्रु है ? मनुष्य का अधःपतन का कौन बड़ा कारण है ?"

प्रश्न सुनकर पहले तो महावीर कुछ चुप रहे फिर बोले—

"मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो।"

"कहिए, क्या सवाल है ?"

'मान लो एक अच्छा खासा कमण्डलु है, जिसमें काफी जल आ सकता है। बताइये यदि उसे नदी में छोड़ा जाय, तो क्या वह डूबेगा ?"

"कदापि नहीं," एक ओर से उत्तर आया।

"ठीक ! ठीक कहा ! मान लीजिए, उसमें नीचे पेंदी में कहीं एक

छोटा सा छेद हो गया और बूँद-बूँद पानी अन्दर आने लगा, तब क्या होगा ?"

दूसरा शिष्य बोला, 'भगवन, बूँद-बूँद पानी इकट्ठा होकर उसे कभी न कभी डूबो डालेगा।"

"मान लीजिए, वह छिद्र पेंदी में न होकर कमण्डलु के दाँई तरफ हो, तो क्या असर पड़ेगा ?"

"यह तो वही बात हुई। वह छेद चाहे, पैंदी में हो, दांई ओर हो, या बाँई ओर हो, कहीं भी क्यों न हो; पानी तो आयेगा ही और उसे डुबोकर रहेगा। छिद्र का मतलब ही डूबना है एक दिन।"

शिष्यों ने जबाब दिया।

'आप मेरा अभिप्राय समझ गये हैं" महावीर बोले, "बस अब मुझे थोड़ा सा ही कहना है।"

"हम आपका अभिप्राय अभी तक नहीं समझे ?" शिष्यों ने जिज्ञासा की।

'बस मनुष्य का यह जीवन भी उस कमण्डलु की तरह ही है।'

'वह किस तरह ?'

'उसमें दुर्गुण रूपी छिद्र जहाँ हुआ कि समझ लो अब वह डूबने ही वाला है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर—ये समस्त दुर्गुण मनुष्य को डुबोने के कारण बन सकते हैं।"

"इनमें सर्वाधिक बुरा कौन है, भगवन् ?"

'शिष्यों, प्रत्येक दुर्गुण अपना-अपना दूषित प्रभाव रखता है। हर एक पूरी तरह खतरनाक है। कोई भी बढ़कर मनुष्य के अधःपतन का कारण बन सकता है। हमें सदा यह देखते रहना चाहिए कि कहीं हमारे जीवन रूपी कमडन्लु में इन जैसा कोई छेद तो नही बन गया है।"

"अब हमारी शंका का समाधान हो गया भगवन।"

पेशगी वेतन

बगदाद में एक बार की घटना है, जो आज की स्थिति में प्रेरक भी है और मार्गदर्शक भी !

एक खलीफा ने, जो वहाँ के बादशाह भी थे, अपना मासिक वेतन निश्चित कर रखा था। राज-सेवा के लिए जैसे दूसरे व्यक्ति वेतन लेते थे, उसी प्रकार खलीफा साहब ने भी अपनी तनख्वाह निश्चित कर रखी थी।

बादशाहों का रहन-सहन, जीवन-स्तर और शान शौकत देखते हुए आप स्वयं कल्पना कर सकते है कि उन्हें कितना अधिक ऊँचा वेतन प्रजा की सेवा के लिए लेना चाहिए।

आप कहेंगे कम-से-कम एक हजार रुपये से लेकर पाँच, आठ, दस हजार प्रतिमास खर्च वसूल करना चाहिए, क्योंकि बादशाह की जिम्मेदारियाँ, राजकीय स्तर पर दावतें, दूसरों की आवभगत सभी उच्चतम स्तर पर करनी पड़ती हैं।

लेकिन खलीफा अजीब प्रकार के बादशाह थे !

वे राज-काज और प्रजा की सेवा के बदले में राज्यकोष से प्रतिदिन संध्या समय तीन दिरम (उस जमाने का एक सिक्का) लिया करते थे।

आप आश्चर्य कर रहे हैं ! बात सचमुच यही थी !

वास्तव में यह वेतन अन्य कर्मचारियों के वेतन और आमदनी की तुलना में नगण्य था। इसमें कठिनता से खाने पीने का खर्च चल सकता था !

लेकिन खलीफा अपनी आदतों में सिकुड़े-सिमटे ईमानदार आदमी थे। कम से कम लेकर प्रजा की निस्पृह सेवा का उद्देश्य अपने समक्ष रखे हुए थे। मितव्ययी होने के कारण वे नशाखोरी, वासना-लोलुपता,

फैशन-परस्ती, फिजूल-खर्ची आदि की कमजोरियों से सुरक्षित थे। सन्तोषीवृत्ति का होने के कारण उन्हें किसी चीज का अभाव नहीं सताता था। उनके आसपास ऐसे चाटुकार मित्रों और खुशामदियों की भी संख्या नहीं बढ़ी हुई थी, जो आगे चलकर झूठे सिद्ध होते हैं और जीवन में अशान्ति का कारण बनते हैं।

खलीफा तीन दिरम में ही अपने सारे परिवार का पालन बहुत सादगी से किया करते थे।

ईद का त्योहार समीप आया।

उनकी बेगम भी और मुसलमानों की तरह उत्सव की तैयारियाँ करने लगी। बच्चों में भी त्योहार के प्रति बड़ा चाव था! बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ सभी को त्योहार मनाने की उमङ्ग रहना स्वाभाविक है। उनकी बेगम ने प्रार्थना की—

"जहाँपनाह! यदि आप कृपा करके अपना तीन-चार दिन का वेतन राज्य-कोष से पेशगी दे दें, तो बच्चों की जिद पूरी कर दूँ। कई दिन से ये मुझसे कह रहे हैं .....।"

"क्या कह रहे हैं ये? क्या चाहते हैं?"

"जहाँपनाह ये ईद पर नये कपड़े सिलवा देने के लिए जिद कर रहे हैं। और उसके लिए पैसों की जरूरत पड़ रही है।"

"लेकिन पैसे तो मेरे पास इस समय इकट्ठे हैं नहीं! और किसी से कर्ज लेना मेरे नियमों के विरुद्ध है।"

"जहाँपनाह, साल भर का त्योहार है। राज्य के सभी बच्चे एक से एक खूबसूरत कपड़े पहन कर निकलेंगे .....हमारे बच्चों के पास भी नये कपड़े होने चाहिए वे जिद कर रहे हैं।"

"पर पैसे कहाँ से आयें?"

"एक सुझाव है।"

"कहिए, क्या सुझाव है? शायद वह कारगर हो जाये।"

"जहाँपनाह, यदि आप कृपा कर से अपना तीन चार दिन का वेतन पेशगी दे दें, तो काम चल जाये। बच्चों को नये कपड़े मिल जायें। ईद आ रही है।"

प्रियतमा का प्रेमपूर्ण आग्रह टालना साधारण बात न थी। धर्मपत्नी की बात सुनकर खलीफा कुछ विचार करते रहे।

फिर बोले, "मैं सोचता हूं।"

"कहिए जहाँपनाह ! क्या तय किया आपने ?"

"यदि मैं तीन दिन जीवित न रहूं तो यह पेशगी वेतन वाला कर्ज कौन चुकायेगा ?"

"तो फिर !" पत्नी ने आश्चर्य प्रकट किया।

"इसलिए बेगम ! तुम खुदा से मेरी जिन्दगी के आगे के तीन दिन का पट्टा ला दो, तो मैं खुशी-खुशी उतने दिन का पेशगी वेतन राज्य के खजाने से उठा लाऊंगा।"

"जहाँपनाह ! यह क्या कहा आपने ? आगे के तीन दिन का पट्टा इसका क्या मतलब ?"

"बगम, अगर मैं आज मर जाऊं, तो तीन दिन का कर्ज मेरे ऊपर रह जायेगा। उसे मेरे मरने के बाद कौन अदा करेगा ? मैं राज्य के सारे पैसे का रक्षक हूँ। उसका सदुपयोग करना मेरी नैतिक जिम्मेदारी है। मैं ही खुद उसे अपने काम में ले लूं और मार लूं, तो मेरे और कर्मचारी मुझसे भी अधिक कर्ज लेंगे, या अनुचित रीति से खायेंगे, उड़ायेंगे। वे अधिक से अधिक हड़पने और कम-से-कम काम करने की कोशिश करेंगे।"

"अरे ! यह क्या कहा ? आप तो बहुत दूर की कह गये !"

"हाँ, ठीक ही तो कहता हूं। आज देश में बहुत से लोग अधिक से अधिक हड़पने का स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं। वे आलसी और कामचोर हैं और ज्यादा-से-ज्यादा लेकर कम से कम काम करने की

इच्छा रखते हैं। मूढमतियों का ऐसा व्यवहार हमारे राष्ट्र को ले डूबेगा।"

"आप दुरुस्त फरमाते हैं। अब मैं आपका दृष्टिकोण समझ गयी।"

यह कह कर बेगम चुप हो गयी।

उनकी ईद सूखी गयी और बच्चों के नये वस्त्र न सिल सके।

मनुष्यता की प्रतिमूर्ति

"क्या कोई ऐसा साहसिक व्यक्ति है, जो अपने अङ्गों पर रेडियम के प्रयोग की अनुमति देकर कैंसर की चिकित्सा को आगे बढ़ा सके?" यह एक चुनौती थी।

चिकित्सा का क्षेत्र डाक्टरों तथा अनुसंधान कर्त्ताओं के लिए तो कष्ट साध्य है ही रोगों के किटाणुओं सम्बन्धी प्रयोग भी कम खतरनाक नहीं हैं। ऐसे किसी साहसिक व्यक्ति की तलाश थी जो कैंसर जैसे भयानक रोग सम्बन्धी परीक्षणों के लिए अपना शरीर बलिदान कर सके! अनुसन्धान के लिए शहीद हो सके!!

आज हर एक समझदार व्यक्ति जानता है कि कैंसर कैसा खतरनाक रोग है! इसके साथ मृत्यु जुड़ी हुई है। अमुक व्यक्ति को कैंसर हो गया है, यह सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते है। मौत की घण्टी सुन पड़ती है।

उन रोगियों की कल्पना कीजिए, जो कैंसर से पीड़ित हो जाते हैं। तिल-तिलकर फोड़ा गलता जाता है। गलते-गलते अन्त में मनुष्य संज्ञा-शून्य हो जाता है। फिर दर्दनाक मौत! उफ्!!

उस मृत्यु का दारुण कष्ट कोई सहृदय व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। उनकी पीड़ा को अपनी आत्मा में कौन अनुभव कर सकता

है। शायद बहुत कम, हजारों में केवल एक ! कैंसर का आक्रमण मृत्यु का ही दुःखद कारुणिक सन्देश है।

चिकित्साशास्त्री गत वर्षों में कैंसर की चिकित्सा के लिए भाँति-भाँति के प्रयोग कर रहे थे। यह रोग कैसे फैलता है ? इसके कीटाणु क्योंकर जन्म लेकर बढ़ते और शरीर का क्षय करते हैं ? इसका उपचार क्योंकर किया जाय ? आदि अनेक समस्यायें चिकित्सकों के सामने थीं।

आज रेडियम द्वारा कैंसर का उपचार सरल और सुगम हो गया है, किन्तु यह प्रसङ्ग उस समय का है, जब चिकित्सक उसके विविध प्रयोगों में लगे थे और रोग पर इसकी प्रतिक्रिया की खोज कर रहे थे।

रेडियम का उपचार एक इतना खतरनाक उपाय था कि डाक्टरों की हिम्मत इसका प्रयोग करने में हारती थी। कारण यह था कि रुग्ण अङ्ग के अतिरिक्त रेडियम की किरणें रोगी के जिस अङ्ग पर पड़ जाती थी, वह बिल्कुल गल जाता था। ऐसी दशा में उसकी वैज्ञानिक जाँच पड़ताल किये बिना उसका प्रयोग बुद्धिमानी नहीं समझा जाता था।

लेकिन अनुसंधान कर्त्ताओं को वैज्ञानिक प्रगति के लिए साधन और सुविधाएँ चाहिए। नये से नये औजार, औषधियाँ और ऐसे साहसिक व्यक्ति चाहिए, जो अपने अङ्गों पर प्रयोगों की अनुमति देकर वैज्ञानिक प्रयोग को आगे बढाने में सहायक हों। जो मानवता की प्रगति में अपनी आहुति दे डालें। शरीर का मोह न करें। उसे समाज के हित और प्रसन्नता के लिए अर्पित करलें।

यह कार्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि डाक्टर की बुद्धि और खोज की नई दिशा ! जो व्यक्ति प्रयोग के लिए अपना बहुमूल्य शरीर देता है, वह भला युद्ध में देश के लिए शहीद होने वाले व्यक्ति से क्या कम है।

अपने अङ्गों पर रेडियम के प्रयोग की अनुमति देकर वैज्ञानिक प्रगति के कार्य को आगे बढ़ाने का दूसरा मतलब था प्राणोत्सर्ग !

क्या कोई ऐसा साहसी व्यक्ति है, जो रेडियम की प्रति-क्रिया को अपने कीमती शरीर पर करने दे ? शहीद होने को तैयार हो जाये ?" डाक्टर पुकार रहे थे। उन्हें ऐसा जीवित आदमी चाहिए था जो रोग को अपने शरीर में फैलते हुए देखे और मरने को हर क्षण तैयार रहे। अपनी आँखों से अपनी मौत देखे।

पर ऐसा कोई धीर-वीर व्यक्ति न था, जो मानवता की भलाई और उन्नति की वेदी पर अपना दान कर सके।

यह पुकार एक वीर महिला ने सुनी और वह रेडियम के उपचार के खतरनाक प्रयोग को अपने शरीर पर करवाने को तैयार हो गई। इस साहसी महिला का नाम था श्रीमती एना—राबटर्स !

श्रीमती एना राब्टर्स यह कहते हुए अपने प्राणोत्सर्ग के लिए तैयार हो गई—"यदि मेरे एक प्राण जाने से सहस्रों रोगियों की प्राण रक्षा हो सके और मनुष्य के रोग-शोक दूर करने में चिकित्सा-विज्ञान प्रगति कर सके, तो मुझे मरने में शोक नहीं, हर्ष ही होगा। यह शरीर मानवता की उन्नति और अनुसंधान के लिए बलिदान है। यदि इस एक शरीर के जाने से सैकडों, हजारों रोगियों की चिकित्सा में सहायता मिल सकती है, तो मैं सहर्ष अपने शरीर पर प्रयोग करवाने और फल-स्वरूप मरने को तैयार हूं।"

कैसा साहस पूर्ण संकल्प ! मानवता की रक्षा के हेतु कितना बड़ा बलिदान !

उन्होंने अन्त में अपना वचन पूरा कर दिखाया। धन्य हैं वे आत्मा जो मानवता की सेवा और रक्षा में प्रयत्न शील हैं !

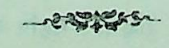

पुराण नष्ट कैसे हुआ ?

देवताओं के होश-हवास गुम हो गये। दैत्यों से वे सभी बहुत बुरी तरह भयभीत थे। उन्होंने जम कर जम्भ नामक हिंसक दैत्य का सामना किया था, किन्तु उस दैत्य की सैन्य शक्ति के सम्मुख उनकी एक नहीं चली थी, और वे हार गये थे। उन्हें सलाह की आवश्यकता थी "कैसे दैत्य जम्भ से मुक्त हों ?"

वे जम्भ से इतने भयभीत हुए कि भाग कर परामर्श के लिए गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे। गुरु बृहस्पति अपनी बुद्धिमत्ता के लिए विख्यात थे। सभी सलाह के लिए उनके पास जाते थे।

'मैं भी इस विषय में सलाह देने में अपने आपको असमर्थ पा रहा हूँ"—गुरु बृहस्पति दुःख से कहने लगे, "आप युद्ध-सम्बन्धी सलाह के लिए बालखिल्य ऋषि के पास जायें। उन्हें दैत्यों के सम्बन्ध में अनुभव है। वे आपको जम्भ से मुक्त करा सकेंगे।"

देवता भय से इतने पीड़ित थे कि वे भागे-भागे बालखिल्य ऋषि के पास पहुंचे। किसी प्रकार दैत्यों से रक्षा करनी थी।

"क्षमा करें, इस सम्बन्ध में मैं भी विवश हूं। आपकी कोई सहायता नहीं कर सकूँगा। हम सब में युद्ध सम्बन्धी बातों के लिए एक ही ऋषि सर्वाधिक बुद्धिमान हैं। दैत्यों को परास्त करने में उनका परामर्श आपकी बहुत सहायता कर सकता है।" बालखिल्य ऋषि ने समझाया।

"फिर इस परामर्श के लिए किनके पास जायें ? दैत्य के भय से हम सब अपना मानसिक सन्तुलन ही खोये हुए हैं!" देवताओं ने कातर प्रार्थना की।

"आप तुरन्त सर्वाधिक बुद्धिमान महर्षि दत्तात्रेय के पास जाइए। दूरदर्शिता में उनके समान कोई नहीं है। वे मानव-मनोविज्ञान के

पण्डित और युद्ध सम्बन्धी बातों में अनुभवी हैं। उनकी सलाह से आप दैत्यों के भय से अवश्य मुक्ति पा जायेंगे, यह मेरा विश्वास है।"

फिर क्या था ! वे महर्षि दत्तात्रेय के पास पहुँचे। नम्र निवेदन किया—"भगवान् ! जम्भ-नामक दुष्ट दैत्य ने हमें बहुत परेशान कर रखा है। वह हमें शान्ति से ईश्वर चिन्तन, भजन-पूजन इत्यादि नहीं करने देता। अब तो हमारे प्राणों का भय है। गुरु बृहस्पति, बालखिल्य आदि ने आपसे तुरत परामर्श लेने, को हमें भेजा है। अब हमारी लज्जा, आत्म-सम्मान और प्राण-रक्षा आपके हाथ में है।"

संयोग की बात ! उस समय किसी परामर्श के लिए दत्तात्रेय के पास लक्ष्मी जी भी आयी हुई थीं।

"सचमुच आप भारी संकट में हैं."—दत्तात्रेय ने सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहा, "दैत्य से रक्षा का उपाय मुझे सूझ गया है।" यह कह कर वे आशा की मुद्रा में लक्ष्मी जी की ओर निहारने लगे। जैसे कुछ पूछना चाहते हों !

"मुझसे कुछ कहना है क्या ?" लक्ष्मी जी पूछने लगीं।

"आपकी सहायता से ही दुष्ट जम्भ तथा उसकी शक्तिशाली मूर्ख-मण्डली को परास्त किया जा सकता है ?"

"मैं तो धन-धान्य की दात्री हूँ। युद्ध के लिये आपको जितनी अर्थ शक्ति की जरूरत हो, सहर्ष मुझसे माँग लीजिए।"

"अर्थ नहीं, कुछ और सहायता चाहिए देवताओं को ?"

"फिर मैं उन्हें क्या दे सकती हूँ ?"

"आप वचन दें, तो कुछ निवेदन करूँ !"

"हाँ, हाँ, किसी महत्व पूर्ण ऊँचे आदर्श की पूर्ति के लिए यदि कष्ट भी सहना पड़े, तो मंजूर है। दैत्यों का भय दूर होना चाहिए। मैं भी उन्हें दुष्ट राक्षस के भय से मुक्त कराना चाहती हूं। आप कोई युक्ति बतायें। मैं आपकी क्या सहायता कर सकती हूं ?"

"आप अपना आकर्षक रूप बनायें।"

"फिर क्या होगा ?"

"बस, तभी तो कष्ट करना होगा आपको, एक महान आदर्श के लिए ! "

"कैसा कष्ट ? "

"दैत्य आपको देख कर मुग्ध हो जायेंगे। विशेष रूप से जम्भ आपको अपनाने के लिए आतुर हो उठेगा। आगे की योजना सरल हो जायेगी।"

"फिर क्या होगा ?"

"वह आपको अपनी पालकी में बैठा कर हरण कर ले जायेगा।"

"ओफ ! तो मुझे दैत्यों के संरक्षण में रहना होगा ?"

"देवि ! महान लक्ष्य पूर्ति के हेतु कुछ और भी कष्ट करना होगा।"

"वह भी कहो ! उन्हें परास्त कैसे किया जायेगा ?"

"पर-स्त्री-स्पर्श से पुण्य नष्ट हो जाता है ! "

"हाँ, यह तो धर्म-शास्त्रों में पुनः-पुनः दोहराया गया है कि विषय-वासना नरक का द्वार है। जो लोग काम वासना के चंगुल में फँस जाते हैं, वे अन्दर ही अन्दर विषय-विकारों और विकृतियों के फलस्वरूप निर्बल हो जाते हैं ।"

"देवि, निर्बल ही नहीं हो जाते, युद्ध में भी हार जाते हैं। काम रूपी अग्नि सूखे हुए वृक्ष की तरह उन्हें अन्दर ही अन्दर जला कर राख कर देती है। ईर्ष्या, द्वेष, काम और क्रोध शक्तिशाली व्यक्ति को भी जला कर नष्ट कर देते हैं।"

"इन बिकारों में सर्वनाश सबसे अधिक किससे होता है ?"

"काम-वासना से प्रत्यक्ष सर्वनाश होता है। यौन-आकर्षण की

स्वाभाविक क्रिया जब कामाग्नि के रूप में भड़क उठती है, तो वह अग्नि शरीर को राख कर देती है।"

"लेकिन काम शक्ति को तो जीवन शक्ति का एक चिह्न कहा गया हैं ?" लक्ष्मी जी ने जिज्ञासा प्रकट की।

"हाँ, सो तो ठीक है, किन्तु उसका उचित अवसर पर ही प्रयोग करना चाहिए। काम-तृप्ति की एक मर्यादा है। उसका उल्लघन साक्षात् मृत्यु-स्वरूप है। देखती नहीं आप, आज के लोगों की गिरी हुई हालत को ?"

"आज लोगों की क्या हालत है ?"

"वे काम शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। कामेन्द्रियों की लिप्सा को तृप्त करना मनुष्य का जीवनोद्देश्य बन गया है। अमर्यादित कामोत्तेजना एक प्रकार की प्रत्यक्ष अग्नि है। काम-वासना के विकार आते ही वीर्य पिघल-पिघल कर नष्ट होता है और देह खोखली हो जाती है। त्वचा, स्नायु, तन्तु, पेशियाँ और अस्थिपिंजर उस अग्नि में जलने लगते हैं। लकवा, गठिया, काँपना, वात-सम्बन्धी समस्त रोग और निर्बलता अति मैथुन के ही तो दुष्परिणाम हैं। शरीर बेकार हो जाता है। मन भी दूषित प्रभाव से नहीं बचता।"

"क्या काम वासना का मन पर भी कुछ कुप्रभाव पड़ता है ?"

"देवि, शरीर की तरह काम-वासना का मन पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कामोत्तेजन के हीन विचार मनुष्य को उद्विग्न कर देते हैं। पागल पन, आत्म हत्या, विरक्ति, उदासीनता, निराशा, सुस्ती, अधिक नींद आना, विश्वास की कमी, पराजय के विचार—ये सब काम-वासना के ही कुप्रभाव हैं, जिनके फल स्वरूप कोई भी व्यक्ति जीवन-युद्ध में पराजित हो सकता है, चाहे वह देवता हो या दानव ! कामुकता का विचार करना बिल्कुल मैथुन जैसा ही खतरनाक है।"

"तो काम-वासना का प्रारम्भ मन से शुरू होता है ?" लक्ष्मी जी ने उत्सुक होकर पूंछा ।

"हाँ, देवि ! कामदेव का एक नाम मनसिज भी है । इस शब्द से यह स्पष्ट है कि मन में वासना के विचार आते ही शरीर में समस्त विकार उत्पन्न होने लगते हैं । इन्द्रियों में उत्तेजना प्रारम्भ हो जाती है । वासना भड़कती है। कामुकता के विचार एक प्रकार से अदृश्य मैथुन ही तो हैं । फलस्वरूप मनुष्य निर्बल और पराजित हो जाता है ।"

"तो यह है आपका दैत्यों को पराजित कराने का उपाय !" लक्ष्मी जी समझ गयी थीं, "लेकिन इसे कार्यान्वित कैसे करेंगे ?"

"जी हाँ, बस इसी सम्बन्ध में आपको कष्ट देना है । आपकी सहायता के बिना दैत्य को पराजित नहीं किया जा सकेगा ।"

"मैं अपने उच्च लक्ष्य की पूर्ति के लिए सहर्ष प्रस्तुत हूँ ।" लक्ष्मी जी ने सहमति दे दी ।

"तब तो देवता जीत गये ही समझिए !" दत्तात्रेय ने हँस कर कहा ।

"फिर हमें क्या आज्ञा है ?" देवताओं ने उत्सुकता से पूछा, "जम्भ के डर से हम काँप रहे हैं । वह दुष्ट हम सबको समाप्त कर देगा । । आप हमारे सम्मान और प्राणों की रक्षा कीजिए ।"

"आपका काम बन गया !" दत्तात्रेय कहने लगे, "आप जाकर किसी तरह दैत्यों को मेरे पास भेज दीजिए । यहाँ आने पर हम सब स्वयं स्थिति को सम्हाल लेंगे ।"

देवता खुशी-खुशी वापस लौट गये । वे आशावान थे ।

देवताओं में बुद्धि-चातुर्य था । उन्होंने दैत्यों से निवेदन किया कि उन पर आक्रमण करने से पूव वे गुरु बृहस्पति से मिल लें । "यदि बृहस्पति कहेंगे, तो हम बिना युद्ध किये ही हार मान लेंगे ।" दैत्य इस शर्त पर तैयार हो गये ।

देवताओं की चालाकी से दैत्य गुरु दत्तात्रेय के पास आ पहुंचे।

तब तक वहाँ लक्ष्मी जी ने अपना स्वरूप अत्यन्त मुग्धकारी बना लिया था। उनमें अब चुम्बक जैसा आकर्षण था। उनके सम्पूर्ण शरीर से सौन्दर्य की आकर्षित करने वाली तरंगें निकल रही थीं। हर कोई उस सौन्दर्य की ओर खिचा जा रहा था। दृष्टि हटाये न हटती थी।

दैत्य जम्भ इतनी सुन्दर स्त्री को देख मुग्ध हो गया। वह सब कुछ भूल कर कामुकता के गन्दे विचारों मे डूब गया। स्त्री-चिन्तन करते-करते उसे स्त्री-स्पर्श की इच्छा होने लगी। वह देवताओं को पराजित करने की बात भूल गया। मानसिक मैथुन की निन्द्य क्रियाएं कामेन्द्रियों में उत्तेजना और फलस्वरूप उसका विनाश शुरू हो गये थे। वह पराजय की ओर सरपट दौड़ा जा रहा था।

जम्भ को और कुछ न सूझा। कामुकता में पागल-सा होकर वह लक्ष्मी जी को जबरदस्ती पालकी में बैठाकर हरण कर ले गया।

तभी दत्तात्रेय ने हँस कर कहा—

"अब हमारा कुटिल चक्र चल गया और हमने दैत्यों को अपने चंगुल में फँसा लिया। अब इनकी पराजय निश्चित है।"

देवताओं ने पूछा, "वह कैसे ?"

"अब पर-स्त्री-स्पर्श से इनका पुराना युगों का संचित पुण्य नष्ट हो चुका है इनमें आन्तरिक निर्बलता आ गयी है। इनका संगठन, ऐक्य और साहस क्षय हो चुके हैं। अब आप आक्रमण कीजिए। आपकी विजय निश्चित है।"

देवताओं ने उस परिस्थिति से लाभ उठाया। उन्होंने तुरन्त

पूरी तैयारी से दैत्यों पर आक्रमण किया । जम्भ उस आक्रमण को न सम्हाल सका ।

सचमुच उन्हें जय-लाभ हुआ ।

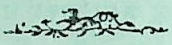

बाबूजी भी खूब आदमी थे

सन् १९६५ की बात है—

इलाहाबाद में 'लीडर' सामाचार-पत्र के कार्यालय की ओर देहाती जैसे खद्दर की धोती-कुरता पहने एक सीधा सादा अधेड़ आयु का व्यक्ति चला जा रहा था ।

सर्दी के कटकटाते ठन्डे दिन !

लगभग प्रातः आठ बजे होंगे । जाड़ों में दुर्भाग्य से उस दिन आकाश मेघाच्छन्न था । अरे ! यह लीजिये, हल्की बर्फ जैसे शीतल जल की नन्ही-नन्ही फुहारें भी पड़ने लगीं ।

स्टेशन पर कोई गाड़ी, ताँगा, इक्का इत्यादि न था । ग्रामीण वेशधारी व्यक्ति पैदल ही स्टेशन से 'लीडर' कार्यालय की ओर बढ़ चले । सोचा, जब स्वयं अपने पाँवो से पैदल चलकर काम निकाला जा सकता है, तो ताँगे की प्रतीक्षा कौन करे !

उधर नन्ही फुहारे कुछ बड़ी बूंदों में परणित हो गई । सड़कें गीली हो चलीं ।

'लीडर' कार्यालय तक पहुंचते-पहुंचते ग्रामीण के वस्त्र फुहारों ने भिगो दिये बर्फ जैसी हवा सनसना रही थी । अन्दर शरीर काँप उठा । हड्डियों तक में कम्पन हो उठा !

पर धुन का पक्का यह ग्रामीण आगे पग बढ़ाये चला जा रहा था । जिसमें देश सेवा का भाव है, उसे क्या पर्वत भी रोक सके हैं ! आँधी,

बारिश और तूफान में इतनी शक्ति नहीं जो उसे पस्तहिम्मत कर सके ! आखिर वह 'लीडर' समाचार-पत्र के दफ्तर में पहुंच ही गया !

सम्पादक श्री सी. वाई. चिन्तामणि दफ्तर में अन्दर मेज पर काम में जुटे हुए थे। अन्दर किसी को प्रविष्ट होने की आज्ञा न थी। ग्रामीण ने अपने नाम का कार्ड चपरासी के द्वारा अन्दर भेज दिया। बाहर खड़ा हो, अन्दर बुलाने की प्रतीक्षा करने लगा।

नौकर अन्दर गया और चिन्तामणि जी को व्यस्त देखकर कार्ड को धीरे से मेज के एक कोने पर रखकर चुपचाप बाहर खिसक आया। उसने समझा कि यह कोई साधारण किसान है, बाहर प्रतीक्षा करता रहेगा।

बाहर निकलने पर उन्होंने नौकर से पूछा—"क्या सम्पादकजी ने मुझे अन्दर आने को नहीं कहा ? मेरे लिये कुछ सन्देश दिया है उन्होंने ?"

"साहब अभी कोई बहुत जरूरी कार्य कर रहे हैं। शायद थोड़ी देर में आपको कार्यालय में अन्दर बुलायेंगे।" चपरासी ने नपातुला शुष्क उत्तर दिया। उसके शब्दों में सहानुभूति लेशमात्र भी न थी।

बात यह थी कि श्री सी. वाई. चिन्तामणि जैसे देश भक्त विद्वान् सम्पादक से मिलने नित्य ही ऐसे अनेक ग्रामीण और खद्दरधारी लोग आते रहते थे। कार्यालय के बाहर दो-तीन चपरासी कोयलों की दहकती अंगीठों पर हाथ सेंक रहे थे। यह ग्रामीण महाशय भी उधर सरकते चले गये। अंगीठी पर अपने गीले वस्त्र सुखाने लगे। ऐसा लगता था कि उन्हीं में मिल गये हों।

संयोग से कुछ देर बाद यकायक सम्पादक चिन्तामणि की दृष्टि उस नाम के कार्ड पर पड़ी ! उसे देखते ही ऐसा लगा मानों बिजली

का करेंट लग गया ! उनके चेहरे की भाव-भंगिमा बदल गई !

"ओफ ! गजब हो गया !" कार्ड को हाथों में लेकर उनके मुंह से निकल गया। उन्होंने हड़बड़ा कर तुरन्त घण्टी बजाई। भागता हुआ चपरासी अन्दर आया !

"साहब, क्या हुक्म है ?" सकपकाई हुई ध्वनि में उसने पूछा—

"यह कार्ड तुम्हें किसने दिया था ?" संशाकित स्वर में सम्पादक चिन्तामणि ने पूछा।

"साहब, कोई देहाती किसान जैसा सीधा-सादा आदमी.... ।"

"हाँ, हाँ, वे ही ! क्या वह देहाती दिखने वाले सज्जन अभी बाहर हैं ?" फिर हाँफते स्वर में बोले, "कहीं चले गये तो गजब हो जावेगा !"

"तब तो मैं ही उन्हें बाहर से ले आता हूं"—कहते हुए वे चिक उठाकर बाहर निकल आए। हड़बड़ाते हुए चारों ओर दृष्टि दौड़ाई पर उन्हें वे न दिखाई दिये।

"अरे ! चपरासी, वे कहाँ हैं ?" उन्होने हर्ष, व्यथा और चिन्ता मिश्रित स्वर में फिर पूछा।

"वे रहे।"—चपरासी ने अंगीठी पर गीले वस्त्र सुखाते हुए एक ग्रामीण की ओर इशारा किया।

"क्षमा करें ! ओफ् बाबूजी ! मुझे लज्जित कर दिया अपने ! बाहर कैसे खड़े रह गये आप ? बड़ी गुस्ताखी हो गई ! मुझे तो आपने जैसे जमीन में ही गाढ़ दिया !"

चिन्तामणिजी आर्त्त स्वर में उनसे क्षमा-याचना करने लगे।

यह ग्रामीण और कोई नहीं, भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद थे। सन् १९३५ में होने वाले काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने जा चुके थे। संयोग से वे किसी जरूरी काम से इलाहा-

बाद गये थे। काँग्रेस अध्यक्ष को न जाने कितने पेचीदे मामले प्रति-दिन हल करने होते हैं। राजेन्द्र बाबू को एक जरूरी समाचार 'लीडर' में प्रकाशित कराना था। देरी होने के भय से उन्होंने स्वयं ही इस कार्य को करना उचित समझा था।

"क्षमा करें राजेन्द्र बाबू! आपको मेरे चपरासी ने पहचानने में भूल करदी। ठण्ड में आपको बाहर मुझसे मिलने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। काँग्रेस के अध्यक्ष को यों बाहर खड़े रहना पड़ा....ओह! मुझे माफ करें आप!"

"यह कहते-कहते चिन्तामणिजी के नेत्र लज्जा और आत्मग्लानि से झुक गये!"

"क्षमा-याचना की इसमें भला क्या जरूरत है चिन्तामणिजी!" बाबू राजेन्द्र प्रसाद बोले।

"इतने बड़े आदमी को यों नौकरों के पास बैठकर प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह ठण्ड.....गीले वस्त्र....यह असुविधा...ओफ्! क्षमा करें!" श्रद्धा से हाथ पकड़ वे उन्हें कार्यालय में ले गये। बातों का क्रम जारी था।

"देश सेवी के लिये छोटे से छोटा कार्य स्वयं ही करना है। सब-को कुछ कुछ असुविधाएँ बनी रहें, जिनको हल करने के लिये आदमी को शारीरिक एवं मानसिक पुरुषार्थ में संलग्न रहना पड़े, चिन्तामणिजी, मुझे लगता है, यही तरीका मनुष्य और भारत की प्रगति के लिये भगवान् को ठीक जंचा होगा।"

"राजनैतिक जीवन में भी आपको बड़े संघर्षों का सामना करना पड़ रहा है बाबूजी,....स्पर्धा....ओफ्! देश की उन्नति के रास्ते में विषमताएँ बहुत हैं....इतने व्यस्त रहते हुए आपको अंगीठी पर गीले वस्त्र सुखाने पड़े....ओफ्!

"चिन्तामणिजी, मुझे कपड़े सुखाना भी तो जरूरी था। आप

सम्पादन के कार्य में व्यस्त थे, तब तक मैंने सोचा, क्यों न इस जरूरी कार्य को निपटा लूँ। हमारी मनमर्जी से दुनियाँ की सारी परिस्थितियाँ बनती चलें और हर आदमी हमारी इच्छा के अनुसार काम करता चले, यह सर्वथा असम्भव है। अनुकूलता और प्रतिकूलता, सफलता और असफलता के जटिल ताने-बाने से यह संसार बना हुआ है। प्रगति और स्पर्धा यहां इसीं कारण है कि संसार में विषमताएँ बहुत हैं।"

हँसकर चिन्तामणिजी ने कहा, "क्या ही अच्छा रहे, यदि संसार में प्रतिकूलता न रहे ?"

"अरे। नहीं, चिन्तामणिजी, मेरी समझ में यह बात उचित नहीं। यदि प्रतिकूलता न रहे, तो संसार बड़ा नीरस हो जाय।"

राजेन्द्र बाबू भी खूब जादमी थे।

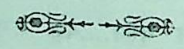

क्या गंगा-स्नान मात्र से मुक्ति सम्भव है ?

शिवरात्रि का पुण्यपर्व है !

आज भारत की धर्म प्राण जनता में एक नया जीवन फूट पड़ रहा है ! यह तो भक्ति भाव का पुण्यपर्व है ! सर्वत्र हर्सोल्लास दिखायी देता है ! लगता हैं, भक्त-समुदाय में आज जैसे एक नया प्राण, एक नवीन स्फूर्ति आ गयी है ! धर्म के प्रति ऐसा अदम्य उत्साह कम पर्वों पर देखा जाता है जैसा आज गंगा जी के तट पर दृष्टिगोचर हो रहा है। धर्म-भावना, सामूहिक स्नान, हरि-कीर्तन, आबाल-वृद्ध नारी जहाँ

'हर हर महादेव !' के स्वर से गोते लगाते हैं, वहाँ एक अपूर्व समाँ-सा बँध जाता है।

आज शिव-महात्म्य प्राप्त करने के लिए असंख्य, भावुक भक्त, नर और नारियाँ, धार्मिक भावों से अभिभूत गद्‌गद मन से पतित-पावनी गंगाजी में स्नान करने जा रहे है। आज के दिन गंगा-स्नान करने का बड़ा पुण्य माना गया है। सभी इस पुण्य-लाभ के लिए प्रयत्न शील हैं।

शिवरात्रि की इस पुण्य बेला में प्रत्येक भक्त वर्ष भर के अपने पुराने समस्त पापों को जैसे धो डालना चाहता है। गंगाजी को कलि-मल-हारिणी, भव-सागर-तारिणी कहा गया है। उनके परम-पावन जल में आज स्नान करने से न केवल संचित पाप धुल जायेंगे, वरन् नये सिरे से धार्मिक जीवन का सूत्रपात्र होगा—यही विचार इस नहाने वालों के मन में है।

यह हर्ष और उल्लास, गंगा-तट का यह दृश्य शिवलोक में बैठे महादेवजी और माता पार्वतीजी देख रहे थे।

पार्वतीजी अपने लोक प्रिय पति के प्रति दिखायी जाने वाली श्रद्धा और भक्ति-भावना से गद्‌गद हो रही थीं, पर शिवजी के मुख-मण्डल पर हर्ष के साथ चिन्तन की रेखाऐं भी स्पष्ट थीं।

शिवजी क्यों चिन्तन शील थे, कोई समझ नहीं पा रहा था !

पार्वतीजी से चुप न रहा गया। उन्होंने महादेव से पूछा, "पति-देव, आपके भक्तों की इस विपुल संख्या को देखकर आज मन-मयूर नृत्य कर रहा है। आज स्पष्ट दीख रहा है कि आप देवताओं में सर्वा-धिक लोकप्रिय हैं ! आज ऐसा उत्साह क्यों है, इन भक्तों में भला ?"

"शिवलोक की प्राप्ति के लिए ये सब प्रयत्न हो रहे हैं; पार्वती ! इन लोगों को यह विश्वास हो गया है कि आज की शुभ घड़ी में जो

गंगाजी में स्नान करेगा, उसे स्नान मात्र से शिवलोक में स्थान मिल जायेगा ।"

"सिर्फ आज के दिन गंगाजी में स्नान कर लेने मात्र से शिवलोक का अक्षय सुख !"

"हाँ, पार्वती ! यही विश्वास भक्तों के समुदाय में चला आ रहा है । आज पर्व है न ?"

"आज स्नान करने वालों की बड़ी भारी संख्या है । लगता है सारा भक्त-समुदाय उमड़ पड़ा हैं ।"

"पार्वती ! आज के दिन हर स्नान करने वाला समझ रहा है कि नहाने मात्र से वह स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर लेगा ।"

पार्वतीजी कुछ देर चुप रही ! वे कुछ सोच-विचार में पड़ गयीं ।

"क्या सोच रही हो पार्वती ?" शिवजी ने पूछा ।

"महा-देव, एक शंका उठ आयी है, मेरे मन में ! जी करता है, आपसे समाधान करवाऊँ !"

"पूछो, क्या प्रश्न है ? शंका-समाधान करलो, पार्वती !

"हम बड़े भाग्यवान हैं कि हमें इतने अधिक भक्त मिले हैं । लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है । क्या संख्या ही लोकप्रियता की कसौटी हो सकती है ?"

"पार्वती, संख्या से क्या होता है ! पर.....?"

"आप क्या कहते-कहते रुक गये ? कहिए न, क्या कहना चाहते हैं, पतिदेव ?"

"हाँ पार्वती, यह सच है कि मेरे इतने अधिक भक्त हैं । असंख्य हैं । नहाने वाले हैं, पर एक बात बड़ी कड़वी है । क्या तुम सुन सकोगी उसे ?"

"पतिदेव, अवश्य कहिए। कड़वी बात का गुण अमृत की तरह होता है कभी-कभी ?"

"वास्तविकता कुछ और ही है पार्वती ! तुम ऊपरी दृष्टि से सब कुछ देखती हो।"

"क्या मतलब ? कुछ और स्पष्ट कीजिए, पतिदेव !"

'भारत धर्म परायण देश है। सर्वत्र भारतीयों की धर्म के कारण प्रसिद्धि है।"

"क्यों न हो, यह गंगा-तट का दृश्य इसका प्रत्यक्ष साक्षी है, पतिदेव," पार्वतीजी कहते लगीं, "अहह ! आज तो इस गंगा-तट पर आनन्द का अक्षय स्त्रोत प्रस्फुटित हो रहा है। वह देखिए, किस भक्ति-भावना और श्रद्धा से भक्त नहाते-धोते हैं और तन्मयता से कीर्तन-भजन कर रहे हैं। सर्वत्र 'हर हर महादेव !' की मुखर ध्वनि आ रही है। स्थान-स्थान पर धार्मिक प्रवचन हो रहे हैं। मन्दिरों में शंख और घण्टियों की मंगल-ध्वनि सुन पड़ रही है। जो देश ऐसा धर्म-परायण हैं, जिनके नागरिकों को धर्म में इतनी प्रगाढ़ आस्था है, वहाँ भला अशान्ति, क्लेश, चिन्ता दुःख, दारिद्रय, भ्रष्टाचार, रोगग्रस्तता, मूढ़ता और अन्ध विश्वास कैसे टिक सकते हैं ! इतने अधिक लोगों का धर्म के प्रति झुकाव देखकर नैतिक उन्नति की बड़ी आशा बँधती है। स्वर्ग का सुख यहीं उत्पन्न हो जायेगा।"

"तुम बड़ी भोली हो, पार्वती ! जब तक इन दिखावटी भक्तों की आत्मा शुद्ध नहीं होती तब तक केवल गंगा स्नान मात्र से उनकी सद्-गति नहीं होगी। उन्हें शिवलोक की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। मैं बहकावे में आने वाला नहीं हूं। कोई सत्य पर झूठ आवरण नहीं डाल सकता।"

"क्या कहा आपने ?" आश्चर्य से पार्वतीजी बोलीं "कुछ स्पष्टीकरण तो कीजिए भगवन् !"

"ठीक ही कहता हू । काश, ये सब असली भक्त होते !"

"आपने कैसे कहा कि इनमें आडम्बर की दुर्गन्ध आ रही है ?"

'अरे पार्वती ! इनमें से अधिकांश तो बाह्य या मिथ्या आडम्बरी धर्म के पालक हैं ! बच्चों की प्रथम पाठशाला की तरह पहले इन्हें आकृष्ट करने की दृष्टि से आडम्बरीय रूप से परिचय कराया जाता है । यह गंगा स्नान, यह भजन, यह कीर्तन, यह पूजन, यह धार्मिक जमघट सब धर्म की ओर खींचने की दृष्टि से किया जाता है । यह धर्म का बाहरी प्रलोभन है । उसका मात्र बाहरी और आकर्षक रूप है जिसमें उलझ कर भक्त को धर्म की ऊँची सीढ़ियों पर क्रमशः चढना चाहिए । इनमें से ज्यादातर भक्त दिखावटी है । ढोंग कर रहे हैं । बड़े सस्ते मूल्य पर मोक्ष चाहते हैं ।"

"अरे, यह तो बड़े पते की बात है ! लेकिन मैं तो जब स्वयं अपनी आँखों से देखूँ, तो विश्वास करूँ । मुझे तो सब असली भक्त दिखायी देते है । बाहर से कोई अन्तर नहीं है ।"

"ठीक है । ठीक है ।"—शिवजी ने उत्तर दिया, "चलिए, हम आपको इन भक्तों की वास्तविकता दिखलायें । ये मूल-तत्व से कितने दूर हैं, धर्म से सर्वथा अनिभज्ञ, वास्तविकता से कोसों दूर—यह स्पष्ट करें । दुःख तो यह देखकर होता है कि आजकल धर्म के वास्तविक रूप की अपेक्षा बाह्य आडम्बरीय रूप का ज्यादा पालन किया जा रहा है ।" ये भक्त तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी पर ही डटे हुए हैं, पार्वती ! नहाने मात्र को ही सब कुछ समझ बैठे हैं ।"

"तो चलिए, एक बार उनकी परीक्षा की जाये !"

"अच्छा, देखो एक युक्ति हैं । थोड़ी देर के लिए मैं एक घृणित बीमार कोढ़ी का रूप धारण किये लेता हूँ और तुम्हें एक अनन्य सुन्दरी का रूप दिये देता हूं । हम दोनों गगाजी के किनारे बैठ जायेंगे । तुम

इन भक्तों से याचना करना कि 'मेरे लुंज-पुंज पति को गंगा-स्नान करा दो, तुम्हारा पुण्य होगा।' देखें, इनमें से कितने दयालु और परोपकारी भक्त निकलते हैं ?"

फिर क्या था । देखते-देखते उनके शरीर बदल गये ।

वे दोनों भक्तों की जाने वाली उस भीड़ के गुजरने के स्थान पर गंगाजी के एक किनारे पर बैठ गये । शिवजी ने कोढ़ी का ऐसा घृणित रूप धारण किया कि उन्हें देखकर लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगे । घाव से पीब बह रही थी, मक्खियाँ भिनभिना रही थीं उन पर । उधर पार्वती का ऐसा सलोना आकर्षक रूप था कि चलते हुए के नेत्र बराबर उन पर अटक जाते थे । प्रत्येक भक्त ललचायी आँखों से उन्हें देखकर हर्षित हो उठता था । दृष्टि हटाये न हटती थी ।

"मेरे पूज्य पतिदेव कोढ़ी है । लुंज-पुंज होने से से स्वयं चलने-फिरने में असमर्थ हो रहे हैं, पर गंगा स्नान पर्व का फल प्राप्त करना चाहते हैं । आपसे प्रार्थना है कि उन्हें कृपाकर स्नान करा दें । आपका बड़ा पुण्य होगा !"—पार्वतीजी गगा स्नान के लिए जाते हुए भक्तों से कातर स्वर में प्रार्थना करतीं ।

उन्होंने बड़े कारुणिक स्वर में प्रार्थना एक नहीं, अनेकों बार दुहरायी । अनुनय किया ।

"पुण्य के भागी बनिए । मेरे कोढ़ी पतिदेव को दया करके गंगा-स्नान कराइए ।" वे सबसे आग्रह कर रही थीं । पर कोई उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दे रहा था ।

भक्त लोग थोड़ी देर उनके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो उनके पास ठहरते, कुछ बातें करना चाहते, फिर चल देते । नहलाने के लिए कोई आगे न आता था ।

कई मनचले लोग कुछ चुहल भी कर बैठते—

"सुन्दरी, तुम कहाँ इस काले कलूटे कोढ़ी के साथ जुड़ी हो ? जिन्दगी क्यों बरबाद कर रही हो ?"

"कृपया इन्हें गंगा-स्नान करा दीजिए।" वे प्रार्थना दोहरातीं।

"अरे, छोड़ो इसे। तुम्हें भी कोढ़ हो जायेगा। हमारे साथ भाग चलो।" उनका सुझाव आता।

"आपका बड़ा पुण्य होगा। पतिदेव को स्नान करा दीजिए।"

"सुन्दरी, इस गन्दे मरीज को छोड़ हमारे साथ चलो। हम तुम्हें बहुत ही आराम से रखेंगे। मौज करोगी। क्यों अपनी कंचन-सी काया राख कर रही हो, इस दुर्गन्धमय मांस के लोथड़े के साथ !" उनका फुसलाना जारी था।

कई लोग उन्हें एक ओर अलग ले जाकर रुपये का प्रलोभन देते, बहकाते-फुसलाते।

उन नहाने वालों में से अनेक व्यक्तियों की दिलचस्पी भक्ति, पुण्य, परोपकार, दया, गंगा-स्नान, धार्मिक प्रवचनों से हट कर नारी के रूप-सौन्दर्य में हो गयी। वे वासना में डूबे हुए थे। किसी भी प्रलोभन से उस अनुपम स्त्री को प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे। त्रिपुण्ड लगाये फकीर और रामनामी कपड़े पहने हुए भक्त रूप-सौन्दर्य में पागल थे।

'क्या कोई मेरी पुकार नहीं सुनेगा, इस भक्तों की भीड़ में ?' पार्वती जी मन में बड़ी परेशान थीं। वे मन ही मन इन धर्मार्थियों को कोस रही थीं। कहने को तो इतनी विपुल संख्या में भक्त गंगा-स्नान के लिए आतुर थे, देवी-देवताओं की पूजा के लिए फूल-बेलपत्र, धूप दीप इत्यादि ले जा रहे थे, किन्तु सहायता के लिए कोई भी भक्त आगे नहीं आ रहा था। अपाहिज कोढ़ी पर किसी को दया नहीं आ रही

थी। झांझ और मृदंगों तथा भक्ति संगीत के स्वर कानों को फाड़े डाल रहे, थे किन्तु उस कोढ़ी को गंगा-स्नान करा कर पुण्य प्राप्त करने को कोई भी तैयार न था। प्रवचनों में दया, सेवा, परोपकार पर बल दिया जा रहा था, पर वे वास्तविकता से कोसों दूर थे। भक्तों के जीवन पर धर्म का कोई असर नहीं था।

इतने में एक साधारण-ग्रामीण उधर से गुजरा।

"कृपया मेरे लुंज पति को गंगा-स्नान करा दीजिए। आपको पुण्य प्राप्त होगा।" पार्वतीजी ने अपनी प्रार्थना को पुनः दोहराया।

"यह तो धर्म का ही कार्य है। मैं पीछे गंगा-स्नान करूँगा, पहले तुम्हारे पतिदेव को गंगा-स्नान कराता हूं।"

यह कह कर उस ग्रामीण ने कोढ़ी को कन्धे पर बिठा लिया। वह हर गंगे ! हर गंगे !' कहता जाता था और आगे बढ़ता जाता था। गंगा-जल के स्पर्श से वह पुलकित हो उठा।

उसने उस कोढ़ी को किनारे रख, खूब धोया। खूब स्वच्छ किया। स्नान से उसकी शारीरिक गन्दगी दूर हो गयी। लेकिन कुछ और भी हुआ।

वह बड़ा चमत्कार था !

शिवजी अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गये।

उन्होंने उस ग्रामीण को वरदान दिया।

"तुम्हारी आत्मा परोपकार के कारण शुद्ध हो चुकी है। तुम उन दिखावटी भक्तों से बहुत ऊँचे हो जो प्रति दिन केवल गंगा-स्नान मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं। तुम्हें शिव लोक की प्राप्ति होगी। मेरे भक्त, मैं उसी धर्म से प्रसन्न होता हूं जिससे समाज और व्यक्ति दोनों को लाभ हो। रूढ़िवादिता धर्म नहीं है। सेवा भाव, इन्द्रियों पर विजय और दृष्टि की निर्मलता ही सच्चे धर्म के गुण हैं। मन की शुद्धि के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता।"

मनुष्यों से तो ये पशु-पक्षी ही अच्छे !

जो दया, कर्तव्य; प्रेम और स्वामिभक्ति समझते हैं

पत्र-पत्रिकाओं में पशु-पक्षियों के सदाचार, प्रेम के अनेक समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। यहाँ उनमें से कुछ पाठकों की जानकारी के लिये दिये जाते हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि जिन जानवरों को हम अबोध और हिंसक मानते हैं, उनकी भी सद्‌उद्देश्यों के सम्पादन में बड़ी प्रवृत्ति होती है। कुछ प्रसङ्ग देखिये—

स्वामिभक्त गरुड़

अजरबे जान के एक गडरिये के पास एक सुन्दर गरुड़ था। उस गडरिये का नाम अलीपू तथा गरुड़ का नाम पेखलीवान था। यह गरुड़ उस गडरिये का चौबीस घटे का साथी था। साथ-साथ रहते-रहते वह गरुड़ अपने स्वामी को बहुत प्रेम भी करने लगा था। वह उसके इर्द-गिर्द रहता, मानो दोनों ही सुख-दुःख के संगी-साथी हों प्रायः सोते समय भी गरुड़ अपने स्वामी के पास रखवाली किया करता था। गडरिया भी उसे जी-जान से चाहता था और अच्छे से अच्छे भोजन खिलाया करता था। बस, यह समझिये कि उनके दो शरीर और एक आत्मा थी।

एक दिन की बात है। संयोग से दिन भर के काम से थककर बेचारा गडरिया खेत के किनारे एक छायादार वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था। उसकी भेड़ें समीप की काँटेदार झाड़ियों में चर रही थीं। गरुड़ पास ही बैठा था। गडरिये की आँख लग गयी और वह गहरी निद्रा में सो गया। अचानक गरुड़ की तीखी आँखों ने देखा कि समीप के एक बिल से एक साँप निकला। वह कुछ देर इधर-उधर देख

गडरिये को सोते पाकर उधर ही बढ़ा सर्प। बड़ा जहरीला था। गरुड़ को तुरन्त ऐसा लगा कि यह विषैला सर्प उसके प्रिय स्वामी को काट लेगा और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी।

गरुड़ फौरन उड़ा, सर्प पर निशाना बाँधा और अपनी चोंच से उस पर आक्रमण कर दिया। थोड़ी देर तक सर्प इस आकस्मिक आक्रमण को पहचान न सका। वह कभी इधर, तो कभी उधर भागता। इतने पर भी जब वह दुष्ट सर्प न माना, तो गरुड़ने उसे अपनी तीखी चोंच में उठा लिया। घायल सर्प भी प्रतिशोधकी भावना से तिलमिला रहा था। चोट खाये हुए सर्प ने अपने को गरुड़ को चारों ओर लपेट लिया। यह द्वन्द्व चल ही रहा था कि शोर सुनकर गड़रिया जाग उठा। किन्तु तब तक उस स्वामिभक्त गरुड़ के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। सर्प भी अधमरा हो चुका था। गडरिये ने उसे मार डाला। गरुड़ के बलिदान की कहानी वहाँ के लोगों में चर्चा का विषय है। जानवरों में भी अपने स्वामी की रक्षा का भाव पाया जाता है।

चील झपट्टा

समस्तीपुर (बिहार) का एक अद्भुत समाचार प्रकाशित हुआ है। अंगार घाट चिकित्सालय में कार्य करने वाली एक नर्स के कागज में लिपटे हुए प्रमाण पत्रों एवं नियुक्ति पत्र को रोटी के टुकड़े के संदेह में एक चील झपट्टा मार कर ले उड़ी।

बात यों हुई कि नर्स वहाँ गुदड़ी बाजार में स्थित अपने मकान की छत पर उक्त प्रमाणपत्रों को दिखाने के लिये खोल रही थी। चील ने समझा कि वह रोटी की पोटली खोल रही है और भोजन पाने की तैयारी कर रही है। वह थोड़ी देर ऊपर उड़ी, फिर एक ही झपट्टे में पूरा पैकेट पंजों में लेकर आकाश में उड़ गयी।

नर्स की तो जैसे जान ही निकल गयी। उसके इन प्रमाण पत्रों पर ही उसकी नौकरी आधारित थी। वह बड़ी परेशान हुई। देर तक आकाश में उड़ती हुई उस दुष्टा का उड़ना देखती रही। उसकी आखें वह जिधर जाती, उधर ही लगी रहीं, वह मन ही मन प्रार्थना कर रही थी कि पैकेट किसी प्रकार छूटकर उसकी छतपर आ गिरे तो कितना अच्छा हो। उसका खोया हुआ खजाना उसे फिर मिल जाय। पर हाय ! ऐसा न हुआ। चील आँखो से ओझल हो गयी। निराश और विक्षुब्ध हो दुखी नर्स बरहवास हो मकान की छत पर बैठ गयी।

वह अपने दुर्भाग्य पर दोनों हाथ मल-मल कर परेशान हो रही थी। न जाने उस चील ने वे बहुमूल्य प्रमाण पत्र और नियुक्ति पत्र कहाँ फेके होंगे।

लगभग एक घंटे तक वह भगवान् की प्रार्थना करती रही।

आश्चर्य की बात है कि कोई आध घन्टे में वही चील उड़ती-उड़ती फिर उसी मकान की छत पर उस पैकेट को गिरा गयी। कुछ देर उडकर उसने ऐसा निशाना बांधकर उस पैकेट को गिराया कि वह उसी छत पर गिरा। अपना खोया हुआ प्रमाण पत्रों का पैकेट पाकर वह नर्स उस उपकारी चील की बुद्धि की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी। पैकेट में कई जगह चोंच मारकर चील को मालूम हो गया था कि उसमें खाने योग्य कोई वस्तु नही थी। अपनी गलती पर दुखी होकर वह फिर उसी मकान की छत पर उड़ती हुई आयी और लिपटे हुए कागज वापस पटक गयी।

गलती कभी भी सुधारी जा सकती है। यह संसार ईमानदारी और सज्जनता की नीव पर ही टिका हुआ है। पक्षी तक परोपकार करते हैं, फिर परमार्थ की दैवी प्रवृत्ति मनुष्य की तो सबसे प्रमुख वृत्ति है।

कीर्तन प्रेमी सर्प ने सबको आश्चर्य में डाला

घटना जनपद की तहसील सलेम पुर के अन्तर्गत ग्राम माड़ो-पार की बतायी गयी है। वहाँ के ग्राम प्रधान ने इस घटना का समाचार भेजा है।

सूचना के अनुसार ११ जनवरी ६५ को उस ग्राम में एक अखण्ड कीर्तन था। भक्त मण्डली तन्मय भाव से भगवान् का पूजन कर धार्मिक भजन गा रही थी। चारों ओर भक्ति रस का पवित्र वातावरण छाया हुआ था। श्रोता समाज भी मधुर स्वर में भजन गुनगुना रहा था। पवित्र दैवी वातावरण में जैसे दुष्कर्म, दुष्ट हिंसक भावनाएँ दब गयी थीं। पापाचारी पुरुषों की कठोर वृत्तियाँ मानो नष्ट हो गयी थीं। ईश्वर की प्रार्थना में द्वेष और दुर्गुण मानो दूर हो गये थे। पाप और मल-विकार गायब हो गये थे। इसी बीच संगीत-माधुर्य से प्रभावित एक सर्प न जाने कहाँ से आया और अखण्ड कीर्तन के मञ्च पर चढ़ गया। ओरों की तरह वह भी वहीं फन ऊँचा किये बैठ गया।

पहले तो सब बड़े भयभीत हुए, किन्तु उस भक्त सर्प ने किसी को कुछ भी परेशान न किया वह तन्मय हो चुपचाप कीर्तन सुनता रहा, भाव-विभोर होता रहा। गाँव वालों ने जब यह सुना तो उसके दर्शन करने वालों का ताँता बँध गया। कीर्तन पूर्ववत् चलता रहा, कीर्तन प्रेमी सर्प बिना हिले-डुले भक्ति रस का आनन्द लेता रहा। वह वैसे ही बैठा रहा। न थका, न ऊबा ! कीर्तन समाप्त होते ही वह जल्दी से न जाने कहाँ रफू चक्कर हो गया। गाँव वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

कहा भी है—

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषाँसि तरेम ॥ (ऋग्वेद ३। २७। ३)

अर्थात् जिन्हें मोक्ष-प्राप्ति की कामना हो, उन्हें चाहिये कि वे द्वेष और दुर्गुणो से बचकर धर्म पथ पर चलते रहें। इसके लिये उन्हें विद्वान् पुरुषों का सत्सङ्ग करना चाहिये और उत्तम रीतियों को धारण करना चाहिये।

स्वामिभक्त गधा

अलवर (राजस्थान) की एक घटना विस्मय का कारण बनी हुई है।

ईदू नामक एक मुसलमान धोबी जय समन्द तालाब पर कपड़े धो रहा था। यह उसका नित्य प्रति का कर्म था। उसका जुम्मी नामक गधा भी प्रति-दिन उसके साथ घाट पर भीगे कपड़े ढोकर ले जाया करता था। दोनों प्रति-दिन साथ ही मेहनत करते थे। जब ईदू तालाब में कपड़े धोता रहता, जुम्मी पास ही घास चरता रहता था। बहुत दिनों तक साथ-साथ रहने के कारण ईदू और जुम्मी एक दूसरे की आदतों से भली भाँति परिचित हो गये थे। सुख दुःख को पहचानते थे। वे एक दूसरे की भाषा को चाहे न समझते हों, किंतु भावों की गुप्त मूक भाषा से—एक दूसरे के मनो भावों से पूर्ण परिचित रहते थे।

एक दिन ईदू कुछ जल्दी में था। घबराहट में उसे ऐसा लगा जैसे कोई कछुवा जल में हो। डर कर वह यकायक निकलने लगा तो बेचारे का पाँव फिसल गया।

पानी काफी गहरा था। दुर्भाग्य यह हुआ कि धोबी जल में तैरना भी नहीं जानता था। अब ईदू पानी में छटपटा रहा था। जोर-जोर से 'जुम्मी ! जुम्मी !!' चिल्ला रहा था। पता नहीं कैसे गधे को यह आभास हुआ कि उसका मालिक खतरे में है और उसकी मदद चाहता है। वह क्या करे ? किसे सहायता के लिये पुकारे ?

उसने पानी में छलाँग लगा दी और तैरकर अपने स्वामी के

पास जा पहुँचा। ईदू ने उसकी पूँछ पकड़ ली और उसके सहारे अपना जान बचा ली।

अब ईदू और जम्मी दोनों किनारे पर खड़े थे। जम्मी को प्रसन्नता थी कि उसने अपने स्वामी की प्राण रक्षा कर ली थी।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः॥ (अथर्ववेद २ । १४ । १)

अर्थात् पृथ्वी, आकाश (पशु-पक्षी, कीट-पतंग) इत्यादि परमात्मा के अनुसार सदैव जगत् का उपकार करते रहते हैं, वैसे ही धार्मिक वृत्ति वाले श्रेष्ठ पुरुष को भी चाहिये कि वह पापों को त्याग कर सुकर्मों द्वारा लोकोपकार के काम करे और इस प्रकार परोपकार के कामों द्वारा निर्भय और सुखी रहे।

सैना ने चोरों को भगाया

जार्जिया में एक फर्नीचर की दूकान से सेंध मारने वालों को खाली हाथ लौट जाना पड़ा। घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि फर्नीचर की उक्त दूकान में चोरों ने सेंध मारी तो अचानक ही उन्हें बड़ी जोर की आवाज सुनायी दी—

'आप क्या चाहते हैं ? आप क्या चाहते हैं ? आप क्या चाहते हैं ?, आवाज काफी तेज थी, जैसे कोई मानव-स्वर बोल रहा हो।

चोरों को यकायक यह डर लगा कि लोग जाग पड़े हैं और वे अब पकड़ लिये जायँगे। पहले तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि कहाँ से यह आवाज आ रही है। वे कुछ देर इधर-उधर देखते रहे। फिर भी आवाज आती रही। आखिर खतरे से डरकर वे तावड़ तोड़ भागे।

बाद में मालूम हुआ कि वहाँ कोई भी आदमी मौजूद नहीं था। यदि चोर चाहते, तो सारा रुपया चुरा ले जाते।

आवाज देने वाली एक भारतीय मैना थी। उसका स्वर पुरुष की तरह साफ था। वह बिल्कुल आदमी की तरह एक ही वाक्य बोलना जानती थी, 'आप क्या चाहते है ?'

दूकान के मालिक ने ग्राहकों से यह वाक्य कहलवाने के लिये उस मैना को दूकान पर रक्खा था।

लखनऊ में कुत्तों की गश्त

लखनऊ का एक समाचार है। गत वर्ष अपराधों की रोक-थाम के लिये रात को पुलिस के सुराग लगाने वाले कुत्तों की गश्त भी जारी कर दी गयी हैं। यह गश्त खुफिया पुलिस ने सिविल पुलिस के सहायतार्थ आरम्भ की है।

प्रयोग के रूप में की गयी यह गश्त सफल रही है। कुल ६ कुत्ते गश्त में लगाये हैं, जो दो-दो करके रोज अदल-बदल कर अमीनाबाद और गणेश गंज में गश्त लगाते बताये जाते हैं। कहते हैं पिछले दिनों इन कुत्तों की सुराग पर रेलवे कैन्टीन के कर्मचारी कल्लू को पकड़ लिया गया, जो कैन्टीन की तजोंरी तोड़कर चार सौ रुपये नकद और बहुत-सा सामान चोरी करके जा रहा था। बताया गया है कि ये चतुर कुत्ते हेड कानेस्टबिल कुँवर बहादुरसिंह मोहम्मद कासिम और देवी दत्त के हम राह में थे।

परमात्मा ने कुत्तों जैसे पशुओं तक को कितनी समझ-बूझ दी है कि वे सज्जन और दुर्जन में विवेक कर सकते हैं। चोरों और डकैतों को पहचान सकते हैं।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति।
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्॥
द्वौ संनिषद्ययन्मन्त्रयेते।
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥

(अथर्ववेद ४।१६।२)

'मनुष्य कितना ही छिपकर पाप क्यों न करे, परमात्मा उसे जान लेता है और उसका उचित दण्ड भी देता है। इसलिये समझ दार मनुष्य को हर प्रकार के पाप से सदैव बचते रहना चाहिये।'

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद्व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥

(अथर्ववेद ४ । १९ । ६)

'दुष्टता पूर्ण कर्म चाहे छोटे हों अथवा बड़े अन्त में करने वालों का सर्वनाश करते हैं। उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ता है।'

कुत्तों द्वारा अंधों का मार्ग-दर्शन

नई दिल्ली से एक समाचार मिला है। कुत्ते मनुष्य के सर्वोत्तम मित्र होते हैं, यही नहीं, अन्धों के लिये वे अच्छे मार्ग-दर्शक भी हो सकते है। कई देशों में प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रशिक्षित कुत्ते अन्धों के लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे। प्रशिक्षित कुत्ता अन्धे मनुष्य का कहीं भी जाने के लिये मार्ग-दर्शन कर सकता है, बशर्ते एक बार पहले वह वहाँ हो आया हो यहाँ तक कि कुत्ता मनुष्य के साथ विश्वास एवं सुरक्षा पूर्वक बस यात्रा करने में भी सहायक हो सकता है। भारत में अन्धों के प्रति द्रवित होकर श्वान-आवास क्लब ने एक योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत अन्धों की सहायता देने में कुत्तों को प्रशिक्षित करने के लिये शीघ्र ही एक प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किया जायगा। संसार भर में सबसे अधिक बीस लाख अन्धे भारत में हैं।

जब पशु तक अनेक उपयोगी तत्वों में मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करते हैं, तब बुद्धि रखने वाले मनुष्य का भी यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता हैं कि वह भूले-भटकों को सत्य, न्याय, विवेक और कर्त्तव्य का मार्ग

दिखाता रहे । हम मानव-जीवन की विशाल सम्भावनाओं और सद्गुणों को समझें और उसकी विशेषताओं का सदुपयोग करते हुए भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करें । भगवान् ने हमें अन्तरात्मा और विवेक दिये है, तो उनका उपभोग इस प्रकार करें कि हम वस्तुत: समझदार और सच्चे बुद्धिमान् भी कहला सकें । हम दूसरों का अधिक से अधिक उपकार और सेवा करें, नि:स्वार्थ भाव से सेवा करें । पुण्य परमार्थ की दृष्टि से ही किया जाना चाहिये । पशु-पक्षी अपने उपकारों का कोई बदला नहीं चाहते, उसी प्रकार हम भी अपने पुण्य परमार्थ का बदला न चाहें । बदले का भाव आते ही प्रत्येक सेवा व्यावसायिक हो जाती है ।

भगवान् ही रक्षक

फफूँद (इटावा) का एक समाचार है । यहाँ उस समय लोग आश्चर्य चकित रह गये, जब श्री राम नारायण के यहाँ आरा मशीन पर बीस दिन पहले ही डाली गयी एक लकड़ी की सिल्ली में से दो तोते के बच्चे जीवित निकल पड़े । उनके बचने की कोई आशा नहीं थी । उन्होंने तोते के बच्चों की रक्षा करते हुए पास ही बैठा एक सर्प भी देखा । सर्प तो आरा मशीन की भेंट चढ़ गया, पर उसने तोते के उन निरीह बच्चों को न मरने दिया । शुभ कार्य में किया हुआ यह बलिदान किसी युद्ध में शहीद होने से क्या कम है !

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथाऽऽत्मानं समाधत्स्व भ्रंश्यसे न पुनर्यथा ॥

याद रखिये, सुरदुर्लभ मानव-शरीर जो बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है, स्वर्ग प्राप्ति का सोपान है । इसे शुभ कर्मों में ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथ भ्रष्टता और पतन की ओर अग्रसर न हो सके ।

भक्त गाय

पाली (राजस्थान) जिले में और उसके आस पास के गाँवों में एक भक्त गाय की चर्चा बच्चे, बूढ़े और जवान—हर किसी से सुनने को मिल सकती है। पाली से १० मील दूर पूनागर गाँवों में एक छोटी सी पहाड़ी – टेकरी है। उस पर दुर्गा देवी का एक छोटा-सा मन्दिर है। इसी गाँव की एक गाय प्रति दिन ऊँची पहाड़ी चढ़कर दुर्गा के पवित्र मन्दिर में जा पहुंचती है और भक्ति भाव से मन्दिर के सामने बैठी रहती है। चाहे मौसम कैसा भी हो, अपने घर से खुलते ही वह पहले मन्दिर में दर्शनों के लिये अवश्य जाती है। गाय के मालिक ने उसकी इस भक्ति भावना में कई बार बाधा डालने का प्रयत्न किया है, किन्तु गाय कभी नहीं मानी। सात वर्षों से उसका यह दर्शन करने का क्रम निरन्तर चल रहा है। उसे देखने के लिये सैकड़ों लोग वहाँ आते हैं और कुछ खाद्य पदार्थ भेंट करते हैं। कहते हैं यह गाय आज तक गर्भवती नहीं हुई है। भक्त कन्या की तरह यह काम वासना से सर्वथा दूर रहकर दुर्गा की आराधना में निमग्न है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिछच्छति ॥

(४। ३९)

याद रखिये, साधन परायण, इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने वाले, श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करते हैं और इस प्रकार ज्ञान प्राप्त व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त करते हैं। भक्ति क्षणिक भावुकता का या आवेश का नाम नहीं हैं, वह साधना की कठिनाइयों को झेलने की कसौटी है। आवेश पूर्ण श्रद्धा से जीवन में कोई लाभ नहीं होता, किंतु जो लोग दृढ़ता पूर्वक साधन की कठिनाइयों को सहन करते हैं, उनकी

श्रद्धा और भी तेजस्विनी बनती है और मन पर तथा इन्द्रियों पर संयम करना आसान हो जाता है।

बन्दरों ने तोते के बच्चे को पाला

शहबाजपुर के निकट कलड़ी गाँव से बन्दरों द्वारा एक तोते के बच्चे के पालन के समाचार मिले हैं। बताते हैं कि एक दिन एक बाज ने तोते के एक बच्चे पर झपट्टा मारा। मामूली खरोंच के बाद बच्चा बच गया, किन्तु दुष्ट हिंसक बाज के लगातार झपट्टों के कारण उसके लिये अपनी जान बचना मुश्किल हो गया।

वह सारा दृश्य वहाँ विद्यमान बन्दरों का एक दल देख रहा था। एक मोटा ताजा बन्दर आगे बढ़कर तोते के बच्चे के पास आया, तो नयी मुसीबत आयी जान प्राणों की भिक्षा माँगने के स्वर में वह तेजी से चें-चें चें चें करने लगा। बन्दर ने दया भाव से प्रेरित होकर उसे आहिस्ते से पकड़ लिया। उसे प्यार से सीने से चिपकाया। बच्चे का गुप्त भय दूर हुआ तो उसने चिल्लाना बन्द कर दिया। दूसरे बन्दर भी दयार्द्र हो उठे। वे पास से कुछ पके बेर तोड़ लाये और बच्चे को बड़े वात्सल्य भाव से खिलाया। दुष्ट बाज बड़ी देर तक अपने शिकार की खोज में चक्कर काटता रहा, पर बन्दरों ने उस बच्चे को बचाया रक्खा। अन्त में बन्दरों द्वारा उसे पूर्ण सुरक्षित जानकर वह निराश होकर उड़ गया।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ती यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूँषि कल्पयैषाम् ।।
(ऋग्वेद १० । १८ । ४)

मनुष्यों ! हमारा जीवन-क्रम इस प्रकार चले, जैसे दिन के बाद दिन और ऋतु के बाद दूसरी ऋतु आती है। कभी कोई छोटी आयु वाला बड़ी आयु वाले के सामने न मरे।

भैंस ने गाय का बछड़ा पाला

मुरसावाद (मध्य प्रदेश) से श्री जसवन्तसिंह यादव ने समाचार दिया है कि उनकी गाय एक बछड़े को जन्म देने के बाद किसी बीमारी के कारण मर गयी। अब उसे कौन दूध पिलाये ? कौन पाले ? बिना दूध पिये बछड़े का जीवन बड़े खतरे में था। निरीह और अबोध बछड़े को देखकर सब परेशान हुए।

संयोग से वह बछड़ा एक भैंस के पास था, जो दूध देती थी। बछड़ा उठा और उस भैंस के थनों में दूध पीने लगा। सबको डर था कि भैंस उसे लात मारकार दूर पटक देगी, पर भैंस का वात्सल्य जग उठा ! बछड़े को मारने के स्थान पर उसने बड़े प्यार उसे चटना शुरू किया। बछड़ा दूध पीता रहा और भैंस उसे चाटती रही। बछड़ा अपनी माँता के मरने का सारा दुःख भूल गया। आश्चर्य की बात यह है कि उस भैंस के खुद उसका पाड़ा भी है। दोनों ही उसका दूध पीते हैं और उसे माँ मान रहे हैं।

कौए की दयालुता

कुछ दिन पूर्व रोडेशिया की घटना है, एक छोसा-सा कुत्ते का बच्चा भटक कर जंगल में चला गया और वहाँ एक दल-दल में फँस गया। दुर्भाग्य से वहाँ उसकी सहायता के लिये कोई भी नहीं पहुंचा। वह निकलने के लिये छटपटाता रहा, भूख से व्याकुल हो गया, पर किसी ने उसकी खबर न ली।

छः दिन तक वह जीवन और मौत के बीच में झूलता रहा। भूख से उसकी अँतड़ियाँ सूख रही थीं। ईश्वर की अनुकम्पा देखिये, कुत्ते के बच्चे को यह दर्दनाक हालत डाल पर बैठे हुए एक कौए ने देखी। उसका नन्हा-सा मन दयार्द्र हो उठा। वह प्रति दिन शहर से रोटी के टुकड़े ला-लाकर उस कुत्ते को खिलाता और उसके जीवन की रक्षा करता रहा।

कौए को बार-बार जंगल की ओर रोटी ले जाते देख चरवाहों को बड़ा कौतूहल हुआ। वे उसके पीछे-पीछे गये, तो उन्हें कौआ रोटी के टुकड़े कुत्ते के पास डालता हुआ मिला। उसी से वह कुत्ता जीवित बचा रहा था।

चरवाहे कौए की दयालुता को देखकर नत मस्तक हो गये। कुत्ते को दल-दल में से निकाला गया और शहर भेज दिया गया, किन्तु कौए की दयालुता लोगों के हृदय में घर कर गयी।

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृत जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे॥

(अथर्ववेद ४। १४। २)

अन्न जैसे भूख मिटाता है, वैसे सद्गुण को अपने जीवन में धारण कर हम दोष-दुर्गुणों को दूर भगायें।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम् प्रान्धं।
श्रोणं चक्षस एतवे कृथः॥
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामुञ्चतं ताभिरूषु।
ऊतिभिरश्विना गतम्॥

(ऋग्वेद १। ११२। ८)

अर्थात् समाज में जो भी अपाहिज, अन्धे, लँगड़े, लूले (बीमार, दुर्बल, निर्धन, क्षति ग्रस्त) आदि हों, वे हमारी घृणा के पात्र नहीं हैं। हमें उन्हें अपना बन्धु मानना चाहिये और उनके साथ भी दयालुता का व्यवहार करना चाहिये। हम सभी ईश्वर के एक विशाल परिवार के सदस्य हैं। सब में समान रुपसे प्रेम भाव रहना चाहिये।

जो मनुष्य दीन-दुखी और गिरे हुए को ऊपर उठाने में कठिनाई और बाधाओं से घबराता नहीं, उसकी रक्षा परमात्मा करता है।

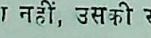

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१-चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	२७)	यजुर्वेद १ खण्ड	६)७५
अथर्व वेद २ खण्ड	१३)५०	सामवेद १ खण्ड	६)७५

२-१०८ उपनिषद् (३ खण्ड) २३)२५

३-षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	४)	सांख्य दर्शन	४)
योग दर्शन	४)	वैशेषिक दर्शन	४)
न्याय दर्शन	४)	मीमांसा दर्शन	५)

४-२० स्मृतियां २ खण्ड — १५)

पुराण

५ शिव (२ खण्ड)	१५)	वायु (२ खण्ड)	१५)
विष्णु (२ खण्ड)	१५)	अग्नि (२ खण्ड)	१५)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१५)	गरुड़ (२ खण्ड)	१५)
हरिवंश (२ खण्ड)	१५)	भविष्य (२ खण्ड)	१५)
पद्म (२ खण्ड)	१५)	देवीभागवत (२ खंड)	१५)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१५)	वामन (२ खण्ड)	१५)
मत्स्य (२ खण्ड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खंड)	१५)
कूर्म (२खण्ड)	१५)	ब्रह्म (२ खण्ड)	१५)
स्कन्द (२ खण्ड)	१५)	नारद (२ खण्ड)	१५)
सूर्य (१ खण्ड)	७)५०	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

६-विष्णु रहस्य ७)५०
७-शिव रहस्य ७)५०
८-तन्त्रमहाविज्ञान २ खण्ड १५)
९-योग वासिष्ठ (२ खण्ड) १८)
१०-२४ गीता (२ खण्ड) १५)
११-मंत्रमहाविज्ञान४खण्ड २४)
१२-उपासना महाविज्ञान ७)५०
१३-हस्तरेखा महाविज्ञान ८)
१४-गृह्य सूत्र संग्रह ७)५०
१५-वैदिक मंत्र विद्या ६)
१६-छान्दोग्योपनिषद् ३)
१७-वृहदारण्यकोपनिषद् ३)
१८-पञ्चदशी १२)
१९-ज्ञानेश्वरी गीता ७)५०
२०-पंचतंत्र ६)
२१-मंत्र शक्ति से रोग निवारण ४)७५

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)।